नागार्जुन

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

आधा पूस गुज़र चुका था।

पिछले दो दिनों से सर्दी बेहद बढ़ गई थी। आसमान और धरती को कोहरा एक बनाए हुए था। बीच-बीच मे बूदाबांदी भी होती रही। जेडिाटे लोगों की हड्डी-हड्डी में समा गया था। दांत बज उठते और मौसम को गालियां सुननी पड़तीं।

और यह मकान!

लगता था कि सूर्य की किरणों के लिए कोई आकर लक्ष्मण-रेखा खीच गया है। दुपहर के बाद वे सहम-सहमकर अन्दर झांकतीं। घड़ी-आधी घड़ी के लिए दरस दिखाकर लापरवाही में सिर के आंचल की तरह खिसकती जाती, पीछे हटती जातीं—क्वांर की कछार में नदी की लहरों की तरह।

चालीस प्राणी थे, किरायेदारों के छै परिवार।

सभी धूप के लिए तरसते थे।

मकान-मालिक को सभी कोसते थे।

सामने लेकिन कोई कुछ कहता नहीं था उससे। वह भारी हिसाबी था, बेजोड़ मिठबोला। मकान के अगले हिस्से मे, सड़क के किनारे उसने दूकान के लायक तीन कमरे निकलवा लिए थे। एक में बुकसेलर, दूसरे में दर्ज़ी, तीसरे मे प्रोविज़न स्टोर के प्रोप्राइटर के नाते वह खुद ही बैठता था। अन्दर वाली खोलियो से किराये के तौर पर दो सौ, और दूकानो से नब्बे रुपये हर महीने आते थे।

उसका अपना परिवार ऊपर के तिमंज़िले पर धूप की गर्माहट के मजे लूटता होता और पिछली खोलियों में बाकी 'प्रजा' उसको कोस रही होती।

मगर आज तो शिशिर की प्रकृति ने सभी के लिए साम्य योग उपस्थित कर दिया था :

कोहरा और बादल !

ठंड और गीलापन !

धुआं और भाप।

सारा दिन यह हाल रहा और शाम होते ही बारिश टूट पड़ी।

ऊपर वाले कमरे में बच्चे ऊधम मचा रहे थे।

नीचे प्रतिभामा फुलके सेंक रही थी।

कि बिजली गुम हो गई···

बड़ा लड़का विभाकर टूटा छाता लेकर बाहर वाली दूकान से दो मोमबत्तियां ले आया तो मां ने बेलन वाला हाथ उठाकर माचिस की ओर संकेत किया।

दीवार वाली आलमारी से माचिस लेकर विभाकर ने मोमबत्ती जला दी। दूसरी मोमबत्ती ऊपर के लिए थी।

रज़ाई में उलझकर छोटी बच्ची तख्त से नीचे गिर गई और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

अप्पी और दामो खेल रहे थे, दोनों लपककर बच्ची को उठाने गए।

विभाकर ने मोमबत्ती जलाई तो हवा का झोंका उसे लील गया। खस-खस-खस···तीन तीलियां बेकार गईं तो कंधे पर का छाता उलटकर सीढ़ियों पर लुढ़क चला—भट-भट-भट !

कि रोशनी आ गई।

कमरा जगमगा उठा, मगर बच्ची अप्पी की गोद में रोती रही।

छाता लेकर वापस आया विभाकर, उसे समेटकर बाहर खूंटी में लटका दिया। अन्दर होते ही सामने दीवार पर पिता के फोटो की तरफ निगाहें गईं। क्षण-भर के लिए गौरव के अहसास से सीना तन गया··· कितना नाम है मेरे पिता का !

"भइया," दामो ने कहा, "हेम चुप नहीं होती है !"

"ला, मुझे दे ! तू नीचे जा, खाना तैयार है !"

"लो, यह तुमसे थोड़े चुप होगी ?"

"ला भी तो !"

"अप्पी ने मेरी गोली चुरा ली है, भइया !"

विभाकर ने दामो की इस शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह बच्ची को चुप कराने लगा—"आ आ आ आ, ओ ओ ओ ओ, ई ई ई ई, आ गे हेम ! चू . . . प..."

कंधे के सहारे संभालकर लेने की वजह से नन्ही जान को आराम मिला और रुलाई सानुनासिक स्वर की प्रलंबित मात्रा मे बदल गई।

"अब सोएगी," नीचे से मा ने कहा।

विभाकर कमरे मे घूम-घूमकर बच्ची को चुपचुपाता रहा। दामो और अप्पी भीगते-भीगते नीचे चले गए।

सीढ़ियो पर साया नही था, न रोशनी थी। सीढ़ियां हमवार होतीं सो भी नहीं। बच्चे ही नहीं, सयाने भी गिरते-पडते थे। मकान-मालिक किराया-दोहन कला का आचार्य तो था ही, अपने को एक्ज़िक्यूटिव इंजीनियरों का नाना समझता था।

अप्पी को भूख लग गई थी। दिल सिकते हुए गोल-गोल फुलकों में उलझ रहा था, नथनों मे सेम-टमाटर-गांठगोभी की तीमन महक-महक उठती थी। पिसी हुई सरसों और इमली का सौरभ मसाले को कई गुना अधिक स्वादिष्ठ बना देते हैं, अपर्णा को इस तरह की तीमन बेहद पसन्द थी।

बेचारी के पैर चूक गए ठीक वहीं पर, जहां उत्तर से पूरब की ओर मुड़कर नीचे जाती थी सीढ़ियां।

नंगी-खरदरी ईंटों से टकराकर माथा फूट गया। ज़ोर की चीख निकली।

चूल्हे के पास से उठकर मां दौड़ी, ऊपर से दौड़ा विभाकर।

वर्षा का वेग थम चुका था लेकिन बूंदाबांदी जारी थी। अपर्णा को

गोद में उठाकर प्रतिभामा ऊपर आ गई···लहू की लकीरें कनपटियों के नीचे ग्राकर कंधों पर फ्राक को भिगो रही थीं। सख्त चोट ने लड़की को संज्ञाशून्य कर दिया था।

पडोस की स्त्रिया कमरे में इकट्ठी हो गई।

विभाकर हकीम को बुलाने गया।

दामो छोटी बच्ची को संभाले हुए था। इस तरह लोगों की भीड़ और *उनका हल्ला-गुल्ला देख-सुनकर बच्ची पहले तो चकरा गई, बाद को* उसकी नन्ही चेतना पर ग्रातंक छा गया और वह पूरी ताकत लगाकर रो पड़ी।

प्रतिभामा ग्रप्पी के माथे का लहू ग्रांचल के खूट से बार-बार पोंछती थी, लेकिन वह बन्द नही हो रहा था।

पड़ोस वाली औरत का घरवाला बड़े हास्पिटल में कम्पाउण्डर था। वह टिंचर का फाहा ले ग्राई। दाई चटपट ग्रालू पीस लाई।

उम्मी की मां ने लहू पोंछकर घाव पर टिंचर वाला फाहा रख दिया तो ग्रप्पी दर्द की टीस से तड़प उठी।

बाकी औरतें मकान-मालिक और कार्पोरेशन को कोस रही थी।

हकीम जी ग्राए तो औरतें हट गई। प्रतिभामा उसी तरह बैठी रही।

देख-दूखकर दढ़ियल बोला, "घाव गहरा है लेकिन घबराने की बात *नहीं। जाडे का मौसम न होता तो ग्रदेशे की बात थी···"*

फटी-फटी ग्रांखों से हकीम का चेहरा देख रही थी, सांवली सूरत का लंबोतरा चेहरा और तरतीब से तराशी हुई खिचड़ी दाढी। बड़ी-बडी ग्रांखें और चौड़ी पेशानी पर चमकता हुआ घाव का गहरा निशान। सिर पर काश्मीरी टोपी थी, ऊनी और रोएंदार।···प्रतिभामा की निगाहें गड़ी *थीं—ट्रेन मे एक बार इसीसे मिलता-जुलता चेहरा प्रतिभामा के कधे के* करीब था, बिल्कुल करीब···ठीक यही ग्रांखें, ठीक यही नाक···। भीड़ की वजह से वे दूसरे-तीसरे नही, पाचवें वर्थ की सीटों के छोर पर ऊपरी वर्थ की मोटी चेन के सहारे खड़-खड़े झूल रहे थे। पिछली लड़ाई का

जमाना था और इलाहाबाद-जंघई के दर्म्यान दौड़ रही थी उस वक्त वह ट्रेन, अपर इण्डिया एक्सप्रेस और तब हिलती-डुलती ट्रेन के मुताबिक छंटी दाढ़ीवाले का वह हाथ भी हरकत मे था। बांह के नीचे बगल के जिस्म से बार-बार हथेली सट रही थी और सहज शील-संकोच वाला लाजवती का सनातनी संस्कार प्रतिरोध के नाम पर बस घुटकर ही रह गया था और उधर विभाकर के पिताजी ऊपरी बर्थ की मोटी चेन के सहारे खड़े-खड़े झूल रहे थे…

"चलिए," हकीम उठकर खड़ा हुआ और विभाकर से बोला, "साथ चलके मल्हम ले आइए और खाने वाली दवा भी मिलेगी…अंदेशे की कोई बात नही…आप लोग इस मकान मे शायद नये-नये आए हैं!"

"जी हां," विभाकर ने कहा, "चार-पाच महीने हो रहे है मगर आपका नाम हम तक पहले ही पहुंच चुका था!"

बेटे की बात के समर्थन मे मां ने भी माथा हिला दिया। हकीम साहब के होंठ खुशी मे फैल गए। दांतों की चमक ने मुस्कान को जाहिर कर दिया।

हकीम नीचे उतरा।

विभाकर पीछे-पीछे गया।

उम्मी की मां आ डटी।

बगल वाली पड़ोसिन ने गर्दन बढाकर हकीम की हिदायतो के बारे में जानना चाहा तो कम्पाउण्डर की बीवी ने नीचे से ही उसे सब-कुछ बता दिया और आदत के अनुसार पूछ लिया, "समझी भला? कि नही समझी?"

"इत्ती-सी बात भला नही समझूगी?" दर्जा छै तक मिडिल स्कूल मे पढ़ी पड़ोसिन तमककर बोली, "और मेरा तो भाई ही डाक्टर है…पौने चार सौ पाता है।"

पौने चार सौ की इस बात पर कम्पाउण्डर की बीवी मुर्झा गई। केतली में चाय का पानी खौल रहा था, बस उसे योंही उतारकर छोड़

दिया। लिहाफ को ऊपर गर्दन तक खींच लिया। पचासी की तनखा पाने-वाला 'कम्पोटर बाबू' मुंगेरीलाल जाड़े की रातों मे भी साढ़े आठन्नी से पहले शायद ही कभी घर आते थे। घर आकर वह कपड़े बदलते थे यानी कमीज़-बंडी निकालकर खूंटियों पर लटका देते थे और दो रुपये दो आने-वाली मद्रासी लुंगी माथा झुकाकर माला की तरह गले में डाल लेते थे, तत्पश्चात् कमर तक लाकर बेचारी को नीचे छोड़ देते···निबटने जाएंगे और पाखाने मे दस मिनट बैठकर इत्मीनान से बीडी धूंकेंगे, इसीसे लुंगी मे नाभि के नीचे हल्की गाठ देकर खडाऊं डालते थे पैरो मे। फिर गुन-गुनाकर अस्पष्ट ध्वनि मे गाना शुरु करते थे, "आ रे बदरा आ···" शकर शैलेंद्र का यह गीत बाबू मुंगेरीलाल को बेहद प्रिय था···तो सूती पाजामा तह करके तकियां के नीचे दबाकर वह कमरे से निकलेंगे। निबटकर तैयार होंगे तो टाइमपीस की मिनट वाली सूई काफी आगे बढ चुकी होगी और दूसरे ब्याह की इस नवेली का कर्कश स्वर मुंगेरीलाल के सीकिया पैरो मे फुर्ती भर देगा, चूल्हे के करीब जाकर वह खुद ही पीढा खीचकर बैठ जाएंगे!

बूदाबादी थम चुकी थी।

मल्हम लगाते ही अपर्णा की आखें मुंद गई।

प्रतिभामा ने उसे गद्दे पर लिटा दिया।

छोटी बच्ची को भी नीद आ रही थी। उसे गोद में लेकर उसने विभाकर से कहा, "क्या पता यह नट्टिन सो ही जाएगी, तुम और दामो नीचे जाकर खाना उठा लाओ। स्टोर वाला रूम बन्द करते आना···और हां, कटोरे मे दूध होगा, लेते आना···"

२

"लेमनजूस!"

"नही, मुझे बिस्कुट दीजिए!"

"और तुझे नहीं चाहिए बिस्कुट ? सुबह का वक्त है, लेमनजूस भी ले और बिस्कुट भी। आरारोट का बिस्कुट खाने से ताकत बढती है बेटी !…"

तीन बिस्कुट और दो लेमनजूस थमाकर बुढ़ऊ ने दोनों बच्चो को वापस रवाना किया, दुअन्नी कैश बाक्स के हवाले हो चुकी थी।

सामने चाय का प्याला था जिसकी नाक गायब थी।

मुन्शी मनबोधलाल मकान-मालिक ही नही थे, सफल दूकानदार भी थे। बच्चों को लुभानेवाली जितनी भी वस्तुएं हो सकती हैं, सब का संग्रह था उनकी दूकान में। बीड़ी-सिगरेट, लेमनजूस-बिस्कुट से लेकर लोटा-बाल्टी, गंजी-कमीज़ तक…क्या नही था उनकी दूकान मे ? लालटेन थी तो बिजली के बल्ब भी थे। कापी-पेन्सिल थी तो मैट्रिक के गेस-पेपर भी थे।

आखिरी बार प्याला उठाकर वह चाय की शेष बूंद तक सुड़क गए और तृप्तिपूर्वक सामने सड़क पर गुज़रने वाले राहगीरों को देखते रहे।

मुसल्लहपुर हाट से लौटते हुए रिक्शे सब्जियों के अधिकाधिक बोझों से लदे होने के कारण यों भी अपनी तरफ ध्यान खीच लेते थे और यही हाल था उन बंगाली बाबुओं का जो हाथ मे झोला लटकाए हाट की दिशा में जा रहे होते, आगे की तरफ से धोती का निचला छोर सभाले और बीड़ी टानते हुए मासांत के दिनों में उनका यह सब्ज़ी-अभियान देखते ही बनता था !

मुन्शी जी ने एक परिचित रिक्शावाले को आवाज़ दी, "ए सुनते हो जी !"

मैली-नीली बुश्शर्ट और खाकी हाफ पैण्ट…सांवली सूरत वाले उस नौजवान ने ब्रेक लगाकर रिक्शा रोका, रुकते-रुकते भी पहिये दस-पाच गज़ बढ़ ही गए।

उतरकर रिक्शावाला दूकान के करीब आया।

"लो," मुन्शी जी ने बीड़ी का बंडल थमाया, "परसों ही आ गए थे,

कहाँ गायब हो जाते हो तुम ?"

गायब हो जाने की कोई कैफियत उसने नहीं दी, मुन्शी जी लेकिन हितैषी बुजुर्ग की तरह मुस्कराते रहे। जाने लगा तो बोले, "एक और न लेते जाओ ! खास जबलपुर का माल है, पटनिया माल भला इसका क्या मुकाबला करेगा ! दू न ?"

माथा हिलाकर नौजवान ने इन्कार किया।

उधर सब्ज़ी के गट्ठरों से आकंठ ढकी हुई अधेड़ तरकारीवाली का गेहुँआं चेहरा उतावली निगाहों से दूकान की ओर घूम रहा था, खैर, रिक्शावाले ने फुर्ती की और उसे कुछ कहने का मौका नहीं दिया।

मद्रासी लुंगी और गोलकट बनियान—बाबू मुंगेरीलाल कोयलावाले की प्रतीक्षा में खड़े थे सम्पादक जी वाला 'आर्यावर्त' लेकर हॉकर अन्दर घुसने ही जा रहा था कि कम्पाउण्डर साहब ने हाथ बढ़ा दिया, "इधर लाओ न !"

अखबार देकर हॉकर ने अपनी साइकिल संभाली।

इधर मुंगेरीलाल कागज में डूब गए।

"क्या हाल-समाचार है कम्पोटर बाबू ?" मकान-मालिक से नहीं रहा गया।

मुंगेरीलाल छठे पेज पर रेलवे का विज्ञापन देख रहे थे—प्लेटफार्म पर केले के छिलके डाल देने से कितनी बड़ी दुर्घटना हो गई ? पंडित मोहनलाल धड़ाम से गिरे और माथा फट गया'''भारी भीड़'''स्ट्रेचर''' खिन्न मुद्रा में स्टेशन-मास्टर खड़ा है'''

कम्पाउण्डर ने अखबार के पन्नों से निगाहें नहीं हटाई, विज्ञापन का आखिरी पैराग्राफ मन ही मन पढ़ता हुआ बोला, "अम्बाला के पास इंजिन पटरी से उतर गई और आसाम में औरत की कोख से बकरी का बच्चा पैदा हुआ है और नेहरू जी ने कहा है कि भारत कई मामलों में सबसे आगे है'''"

और मुंगेरीलाल आज का एक विशिष्ट समाचार मुन्शी मनबोधलाल

से छिपा रहे थे, यह वेईमानी उनके विवेक को खरोचने लगी···विज्ञापन से तबीयत उचट गई, मन-मन्दिर के कोने में वह विशिष्ट समाचार गूजने लगा—"बड़े अस्पताल मे दवाओं की चोरी!"···"हज़ारों का माल गायब"···"डाक्टरों-कम्पाउण्डरों-नर्सों-कर्मचारियों का भ्रष्टाचार पराकाष्ठा पर"···"स्वास्थ्य-विभाग के मन्त्री अविलम्ब पद-त्याग करें" ··

यों, छिलके वाली विज्ञापन-सामग्री भी कम्पाउण्डर के दिल को छू गई थी क्योंकि सोनपुर के प्लेटफ़ार्म पर उसके हाथों का फेंका हुआ छिलका एक घूघटवाली नवेली के घुटनों को लहूलुहान कर चुका था। लेकिन, वह तो आठ-दस वर्ष पहले की बात थी न? और, यह अस्पताल-काड! अरे बाप रे। बिल्कुल ताज़ा मामला था यह तो! ···

अखबार तहियाकर बाबू मुंगेरीलाल मकान के अन्दर आ गए और पुकारा, "विभाकर! विभाकर! ओ विभाकर!"

"जी, आया!" ऊपर की पीछे वाली खोली से आवाज़ आई और अगले ही क्षण चौदह साला किशोर सीढ़ियों से उतरता दिखाई पड़ा।

अखबार लेकर और मन ही मन कम्पाउण्डर को कोसता हुआ विभाकर ऊपर अपने कमरे में वापस आया। उसे यह बात एकदम नागवार लगती है कि चालीस व्यक्तियों वाले इस उपनिवेश के अन्दर खरीदकर अखबार पढ़ने वाला दूसरा कोई है ही नहीं! कैसे हैं लोग! अखबारों की चर्चा छिड़ने पर बोल उठते है, "हुंह, डेली? हमारे दफ्तर में चौदह ठो दैनिक आता है! सात ठो वीकली! हम तो बस इत्मीनान से वही देखते रहते हैं···यहां तो हेड लाइन भर झांक लेते हैं···विभाकर जी, आपके पिता सम्पादक है फिर भी दो ही चार ठो डेली पेपर देख पाते होगे मगर हमारे दफ्तर मे···ज़रा देख आइए चलकर!"

विभाकर को इन लोगो पर अन्दर ही अन्दर गुस्सा आता है। इनकी सारी डींग उसे कोरी बकवास प्रतीत होती है। इस छोटी उम्र में भी वह समाचारपत्रों की अनिवार्यता भली भाति महसूस करता था।

कोयलावाले की मोटी आवाज गूंज उठी, "ल्ले···कोइला ह···लेक्···"

मुंगेरीलाल फिर बाहर निकल आए।

महीने का आखिरी सप्ताह था, पांच सेर से ज्यादा लेने की गुंजायश थी नहीं। खुद ही वह ठेले पर झुक गए और पथरिया ईंधन के छोटे-छोटे हल्के डले उठा-उठाकर तराजू वाले पटरे पर डालने लगे।

कोयलावाला खुलकर हंसा और बोला, "घटिया माल नहीं रखता हूं सरकार! रुई की तरह फक से आग पकड़ लेता है और एक बार सुलगा लीजिए फिर घण्टों जलता रहेगा···हार्डिंज रोड, बेली रोड, कदमकुआं, बोरिंग रोड···हमी लोग सबतर कोयला पहुंचाते हैं मालिक!···"

"बड़े उस्ताद होते हो तुम लोग," मुंगेरीलाल ने हाथ से हाथ झाड़कर कहा, "ज़रा-सी निगाह ओट हुई कि कोयले के बदले काले पत्थरों से ही तुम हमारी किचन भर दोगे! दिन में दस दफे चूल्हा रूठेगा तो घर की मलिकाइन सर फोड़ लेगी···"

इस पर उधर मुंशी मनबोधलाल को हंसी आ गई। प्राइमरी स्कूल का पड़ोसी लड़का बस्ता लटकाए पेन्सिल परख रहा था, दूसरी मुट्ठी के अंदर से चवन्नी झांक रही थी। ललचाई नज़र से मुंशी जी ने मुट्ठी की तरफ कई बार देखा और अपने अबोध गाहक से कहा, "कापी नहीं लोगे? अब की बड़ा उम्दा कागज़ है बबुआ···एक ठो ज़रूर ले लो।"

"नहीं, रहने दीजिए," लड़का बोला और पेन्सिल ले ली।

तब तक बाबू मुंगेरीलाल भी आ डटे।

"अभी आप मुस्करा क्यों रहे थे मुन्शी जी?"

"घर का मालिक कम्पोटर रहे और घर की मलिकाइन सर फोड़ लेगी!"

सर फोड़ने वाली बात सुनते ही कोयलावाला पास आ गया, बोला, "नहीं सरकार, हमारा कोयला खराब नहीं है। मलिकाइन को रत्ती-भर भी तकलीफ हो तो मेरे नाम पर आप कुकुर पोस लीजिएगा···"

मनबोधलाल मुस्कराते रहे।

मुंगेरीलाल रुपये की रेजगारी चाहते थे। एक हाथ दूकान की तरफ

बढा था, दूसरा भी अब ठेलावाले की ओर उठ गया। बोले, "बस, पैसे लो और भागो! ज्यादा कानून मत बघारो…"

दूकानदार बनाम मकान-मालिक ने साढ़े पांच आने कोयलावाले के हवाले किए, बाकी रेजगारी कम्पाउण्डर को थमाई।

कोयलावाला ठेला लेकर आगे बढ़ा।

मनबोधलाल मुस्कराए और कहा, "दस पैसे का सौदा परसों अन्दर मंगवाइन थे…"

"सो सब पहली के बाद होगा…" मुंगेरीलाल ने मानो पीठ की तरफ से ही कहा, अन्दर आने की जल्दी थी।

उतावली में गू पर एक पैर पड गया जो कि उन्होंने स्वयं नही देखा। दरवाजे की चौखट लांघकर भीतर अंगनई में दाखिल हुए तो पत्नी बोली, "हुं हुं हुं हुं, यह चंदन वाला पैर तो धो आओ! …जाड़े का छोटा दिन और पानी की किल्लत…तुमने मेरा एक काम और बढा दिया! दाई अपनी क्या है, शैतान की साली है…! कुल्लम तीन बाल्टी पानी भरके भाग खड़ी होती है…हे भगवान, यह कैसा नरक-निवास लिखा था लिलार मे…जाओ, सड़क वाले नल पर से पैर धो आओ…"

कम्पाउण्डर ने कोयलावाली टोकरी चूल्हे के करीब पटक दी। घिन और गुस्सा…सिर से लेकर एंड़ी तक सुलग उठा बदन। ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगा, "सुअर के बच्चे! जहां-तहां हगते फिरते हैं। कमीनों की औलाद…मैं साखू की कील ठोंक दूगा, आखिर समझ क्या रक्खा है? लेंडी के पूत…"

पांच मिनट तक कम्पाउण्डर गालियां बकता रहा।

जवाब मे एक भी शब्द नहीं, कहीं से भी नही! किसी ओर से भी नहीं।

मुंगेरीलाल के दिल का उफान बाहर निकल चुका तो वह मकान के सदर फाटक को पार करके बाहर सड़क पर आ गया।

पच्छिम की ओर तीन मकान आगे बायें हटकर फुटपाथ के कगार

के मकान की दीवार से लगा
पर कार्पोरेशन का नल था, बुढिया बंगालिन ला बह रहा था, सदाबहार
हुआ। उसीके साथ-साथ खुला-फैला गन्दा नावा नल के नीचे, नाले पर
गटर! ४×२ वर्गफुट का सीमेण्ट का घिरकारण आम जनता इस जला-
बिछा था। सड़क की तरफ से खुला होने के क
शय का पूरा उपयोग कर लेती थी। कज प्रकाशन वाले नेपाली

कम्पाउण्डर करीब आया तो देखा, रहा है। जान-पहचान की
दरबान का नौजवान बेटा हाफ पैण्ट सबुनान मानो दुगुने सफेद होकर
मुस्कराहट उभरी तो लाल मसूड़ों वाले दाँपाथ पर हट आया। बोला,
जगमगा उठे। उठकर वह खड़ा हो गया, फुट
"आइए हजूर!" धोना है..."

"बस, एक मिनट बहादुर! सिर्फ पैर आप!"

"नहीं हजूर, हाथ-मुंह भी धो सकता हैन्दा तलवा अपने-आप साफ

गिरते पानी की चोट में एक पैर का गसुलभ संस्कार की वजह से
हो गया तो मुंगेरीलाल ने शुचिता के मानव
दूसरे पैर को भी नल के नीचे डाल दिया। ?"

नेपाली ने पूछा, "गोबर लगा था हजूर गया।

"हाँ जी," आहिस्ता से कम्पाउण्डर कह सीधे-सादे नेपाली नौजवान
एड़ियों से रगड़-रगड़कर पैर धो लिए तो अपने लिए उसने निकलवा
की जुबान से एक बार और वह प्रिय सम्बोधन
लेना चाहा। या, "हो गया हजूर ?"

कि आप ही बहादुर के मुंह से निकल आ बार पूरा-पूरा स्वाद मिला

मुंगेरीलाल की तबीयत खिल उठी। इस
हजरत को अपने व्यक्तित्व का। ाल वापस आए कि मकान-

फिर तो इस कदर फूले-फूले बाबू मुंगेरील में शिकायतें पेश करने का
मालिक से पड़ोसियों और उनके बच्चों के बारे
पूर्व-संकल्प तक खयाल से उतर चुका था।

कुं–१

३

सदर दरवाजे से आगे बढ़ते ही बाईं तरफ एक बड़ा कमरा था। वह हमेशा बन्द रहता था। कमरे के ऊपर चौबारा खपरैलों से छवाया हुआ। अन्दर पिछले चार महीने से जो परिवार टिका था उसमे तीन प्राणी थे। एक अधेड औरत, एक अठारह साला छोकरी, और एक अधेड़ मर्द।

महिला को ल्यूकोरिया हो गया था, बड़े अस्पताल में चिकित्सा चल रही थी। लडकी परिचर्या के लिए साथ आई थी। मर्द चार-छै रोज़ दिखाई पड़ता फिर हफ्ता-भर के लिए कहीं चला जाता।

बीमार थी, सो बुआ होती थी। लडकी भतीजी।

कम्पाउण्डर की बीवी नई-नवेली तो थी ही, बेहद चुलबुली तबीयत की थी।

अक्सर दुपहर को, जब मर्द अपने-अपने धंधे मे निकल जाते, कम्पाउण्डर की बीवी उस छोकरी के साथ गगा जाती थी—कृष्णाघाट। उम्र मे चार-छै साल का ही अन्तर था एक को दूसरी के दिल में घुसने के लिए ज्यादा कसरत नहीं करनी पडी।

ऐसे ही वक्त एक बार कम्पाउण्डर की बीवी ने उस छोकरी से पूछ लिया, "तुझसे पहले बुआ जी के साथ जो रहने आई थी, कौन थी भुवन?"

"हमारे तीसरे चाचा की लडकी थी," भुवनेसरी ने जवाब दिया और बुआ की चोली मे साबुन रगडती रही। क्षण-भर बाद ही जाने क्या बात *दिमाग में आई कि उलटकर पूछ बैठी, "क्यों जीजी, अभी वह क्यों याद* आई?"

इस पर मुस्कराती रही कम्पाउण्डर की बीवी, *कुछ बोली नहीं।*

भुवन को इस पर शक हुआ। लगा कि यह औरत कोई सूराख पा गई है उनके गोरखधंधे की।

साबुन वाला हाथ उठाकर भुवन बोली, "उसका माथा ठीक नहीं

था, सुनती हो जीजी ?"

इस पर भी कम्पाउण्डर की बीवी कुछ नही बोली। ज़ोर से पति का कपडा पछीटती रही।

पीछे, नहाते वक्त बात चली तो प्रसंग ही बदल चुका था।

भुवन ने कहा, "लाओ जीजी, पीठ मसल दूं।"

"बस! पीठ ही ?" शरारत-भरी नज़रों से कम्पाउण्डर की बीवी ने भुवनेसरी की ओर देखा और पीठ दे दी···।

"एक बात पूछू भुवन ?"

"एक ही क्यो, दो पूछ लो चाहे !"

"जाड़े की रात मे अकेले कैसे नीद आती है ?"

"बस, तुम तो जीजी एक ही सवाल जानती हो !"

"अपने तो बस एक ही सवाल जानते है ! मा-बाप ने जब खूटे से बांध दिया तो दुनिया-भर के खटराग क्या जानें : वर्ना हम भी सात घाट का पानी पीते, सौ किसिम के सुख लूटते···"

अब भुवनेसरी को यकीन हो गया कि जरूर यह औरत हमारी कारगुज़ारियो के बारे मे थोड़ा-कुछ जानती है···उसके कानो मे गूजने लगा, "वाह रे चाचा, वाह री भतीजी, वाह री बुआ !"

पीठ मसलवाकर कम्पाउण्डर की बीवी ने कहा, "ला, अब तेरी पीठ का मैल छुडा दू···"

ना-ना करके भुवन छिटक जाना चाहती थी मगर नही बच सकी। कम्पाउण्डर की बीवी ने उसे पकड़ लिया। पानी के अन्दर ही कमर को जाघो की गिरफ्त मे लेकर वह भुवन की पीठ मलने लगी।

गौर से देखने पर छोकरी की पीठ पर तीन-चार लम्बे-पतले निशान दिखाई पड़े। पूछा, "ये कैसे दाग हैं ?"

भुवनेसरी ने सहज भाव में कहा, "पिटाई के निशान हैं।"

"पिटाई के ?"

"हां, बेंत के।"

"किस राक्षस ने पीटा था ?"

"राक्षस नहीं था जीजी, बहुत बड़े महात्मा थे वो तो···जितना ज्यादा खुश होते थे, उतनी ही अधिक पिटाई पड़ती थी ! मेरी पीठ पर बाईस बार बेंत बरसी थी न ? बेहोश हो गई थी, मुझे मामा उठाकर ले आए थे···"

कम्पाउण्डर की बीवी ने कहा, "फिर तो तुझे बड़ा ही अच्छा दूल्हा मिला होगा न ? खूब मानता होगा और खूब···"

बालों वाले अपने बड़े सिर की ओट में भुवन के होठों को उसने जोरों से चूम लिया···

जरा हटकर एक बुढ़िया नहा रही थी, ऊपर दो औरतें कपड़े पछीट रही थीं···भुवन बोली, "लोग क्या कहेंगे जीजी ?"

"जहन्नुम में जाएं लोग !" उसने कहा और मुंह बना लिया।

गंगा से लौटी वे तो डेढ़ बज रहा था।

सड़क पर, मकान के नजदीक, रिक्शा लगा था। हाथों में उर्दू का अखबार थामे एक सरदार जी बैठे थे रिक्शा पर, खिचड़ी दाढ़ी और छींट का साफा। खुले गले का कोट और पेशावरी स्टाइल का पाजामा। पैरों में नुकीली जूतियां।

दोनों अन्दर बुआ के सामने आईं तो एक अपरिचित महिला बैठी दिखाई पड़ी। पहनावा पंजाबिन का, बोली बिहार की।

बुआ के आगे दो ठोंगे रखे थे, अंगूर और सेब के।

आंखों का इशारा पाकर भुवन और कम्पाउण्डर की बीवी इधर आ गईं, उन्हें गुफ्तगू के लिए छोड़ दिया।

कम्पाउण्डर के कमरे में आकर भुवनेसरी ने पछीटे हुए कपड़े जीजी को थमा दिए। पलंग पर लेटती हुई वह बोली, "माथा भारी है, बुखार आए और मरूं···"

"कैसी अलच्छ बात मुंह से निकालती है, भुवन !" कम्पाउण्डर की बीवी ने फटकारा और कपड़े डालने छत पर चली गई।

वापस आकर थाली में अपने लिए उसने खाना निकाला।

मोटे चावलो का भात, बथुआ और बड़ी का तीमन, आंवले की चटनी।

मुह के अन्दर पहला कौर ठूंस लिया और बोली, "तू तो यह खाना सूघ भी नहीं सकती...क्या-क्या पकाया था ?"

भुवनेसरी ने कहा, "आलू-गोभी, टमाटर की चटनी..."

"और बुआ के लिए ?"

"दलिया और लौकी की भाजी और दूध..."

कम्पाउण्डर की बीवी ने पूछा, "अच्छा भुवन, यह जो अभी पंजाबिन बैठी थी बुआ के पास वह भी तो रिश्ते की ही कोई होगी न ?"

भुवनेसरी ने कहा, "नही, रिश्ते की नही है यह। जान-पहचान की होगी। बात यो है कि हमारे फूफा जी पोस्ट-मास्टर थे, दस-बीस शहरों मे रहे थे। दो-दो वर्ष पर जगह बदल जाती थी। बिहार के अन्दर शायद ही कोई जिला-सब-डिवीजन छूटा हो उनसे। बुआ हमेशा साथ रही। देखती नहीं हो कि किस ठाठ से पक्की बोली बोलती है !"

कम्पाउण्डर की बीवी ने दिल ही दिल मे अपने से कहा, 'छिनाल कही की ! उडती चिडिया की पूछ मे हल्दी लगाने वाली राड़ ! किस कदर बात बनाती है...फूफा जी पोस्ट-मास्टर थे ! मामा मिनिस्टर थे ! चुड़ैल कही की !...'

प्रकट तौर पर उसने कहा, "मैं ठेठ देहात की रहने वाली मामूली औरत हूं, पचासी रुपइया तनखा आती है घर में। घर वाला जास्ती पढा-लिखा नही है...इसीसे अनाप-शनाप सवाल पूछती रहती हूं तुझसे। रंज न होना भुवन !"

भुवनेसरी उठ बैठी और बोली, "तुम भी भला क्या बात करती हो जीजी ! बुआ के बारे मे पूछती हो, ठीक ही करती हो। नेह-छोह न होता तो पूछापेखी नही न करतीं ?..."

मगर मन ही मन भुवनेसरी कहती गई, 'और तेरे पास नित नये

छैले आते है। ठिठोली और खिलखिलाहट···कमीज के कालर में सेंदुर का दाग—इत्र की खुशबू और रेशमी रूमाल···गटर मे चमकते हुए चूडियों के टुकड़े···'

"बुआ बुला रही है आपको," पडोस की बच्ची ने आकर कहा और भुवनेसरी अपने बासे की तरफ गई।

बुआ ने उसे दो नवरी नोट थमाए।

पूछा, "कुल कितने हुए ?"

"सात नवरी और पन्दरह दस वाले।"

"ले, यह भी लेती जा !"

सिरहाने मे गद्दे के नीचे दस-दस के पाच नोट रखे थे। बुआ ने निकालकर वह भी थमा दिया।

रुपये ट्रक मे रख आई भुवनेसरी।

जरूर ही सरदारिन दे गई होगी यह रकम। किस मद के रुपये होंगे ! खरीदी जाने वाली किसी लडकी के लिए बयाने की रकम तो नही थमा गई है ?···साहस नही हुआ कि बुआ से इस बारे मे कुछ पूछ लेती, आकर कुर्सी पर बैठ गई भुवन। सोच रही थी कि स्टोव जलाए। तीन-चार के दरम्यान बुआ को चाय जरूर चाहिए।

बीमारी के चलते बुआ का बदन ढाचा-भर रह गया था।

हथेली से बुआ ने इशारा किया।

भुवन तख्त पर आ गई, सटकर बैठी बुआ से।

आहिस्ता से बोली, "बडी पाजी है, कम्पाउंडर की बीवी से ज्यादा न सटना। जाने कैसे क्या निकलवा ले जुबान से ! दुश्मन के आदमी पीछे लगे है। भले तो किताब पढती रहती है···क्या बातें कर रही थी आज ?···ऊपर वाला लडका नहीं लौटा है स्कूल से ? ढेर-सी किताबें है उसके पास···मैं तो वही से किताबें मगवा लिया करती थी मगर पीछे पता चला कि बाप किसी अखबार मे काम करता है, संपादक है। संपादक लोग बडे शैतान होते है। भूल करके भी इन शैतानों से जान-पहचान

नही करनी चाहिए। पीछे लगेंगे तो खोद-खादकर सारी बातों का पता लगा लेंगे, किसी न किसी बहाने तुम्हारी असलियत अखबार मे छपकर लोगों के सामने आ जाएगी और तुम मुह दिखाने लायक नही रह जाओगी।…"

"क्यों, मैंने क्या किया ?" लड़की चौकन्नी होकर पूछ बैठी, मानो सचमुच कोई सम्पादक उसके पीछे पड जाएगा !

"धत् !" बुआ को हसी आ गई भुवन के भोलेपन पर, "मैं तो बस बात कर रही थी कि दुश्मन हमारे पीछे लगे है…और तू तो नाहक चिहुंक उठी, पगली कही की !"

बुआ भुवनेसरी की पीठ पर हाथ फेरने लगी। चोटी भूल रही थी, अगले ही क्षण चोटी से खेलने लगी बुआ।

भुवनेसरी सोच रही थी, 'कौन, चालीस-पचास भी तो नही लगेंगे। मद्रासी साड़ी के लिए कई बार कहा है मगर ध्यान ही नही देती हैं बुआ… कम्पाउण्डर की बीवी के पास तीस-तीस की दो साड़ियां है, बम्बइया छीट के सिल्कन ब्लाउज है तीन-चार डिज़ाइन के, कानों के टाप्स हैं और मगर की शकल के कुंडल हैं…लेकिन मेरे पास क्या है ? तीन-चार मामूली साडिया, दो ब्लाउज रोल्ड-गोल्ड के ईयररिंग और…बुआ मुझे ठगती है…यह औरत भी चुड़ैलों की एक चुड़ैल है। जाने कितनी छोकरियो का कीमा बनाया होगा। मुझे भी तल-भुनकर खा जाएगी। हम क्या है ? रकम बनाने की फैक्टरी के कल-पुर्जे हैं ! देखे तो आके कोई, ममता का कुआं बनकर कैसे हमदर्दी उडेल रही है इस वक्त।…'

"तो तू गुमसुम क्यो बैठी है ?" बुआ ने आखो मे आखें डालकर जानना चाहा।

भुवन ऊपर-ऊपर से मुसकराई।

बुआ बोली, "शर्मा जी आएं तो कपड़े मंगवाऊंगी। एक भी ढंग की साडी नही है तेरे पास। कपड़े तो निहायत जरूरी होते हैं न ? कभी याद भी तो नहीं दिलाती है। छोकरिया खुद गूगी बन जाएं तो दूसरा

क्या करे ?"

भौहें तानकर और आखें नचाकर भुवनेसरी ने अपने पैरो की ओर देख लिया जो कि किचन की तरफ बढ गए थे।

बुआ ने कहा, "पालक के पकौड़े बना लेना।"

"डाक्टर ने मना कर रखा है न ?" जवाब आया।

"जहन्नुम में जाएं डाक्टर-फाक्टर, जीभ को मैं पत्थर नहीं बना लूगी। मन को रुलाऊंगी तो तन भी कलपता रहेगा। जा, तू मेरी बात सुन ! पालक के पकौडे अच्छे रहेगे।"

बुकसेलर की दुकान-भर थी, रहने की जगह मुहल्ला महेंद्रू मे थी। दर्जी का भी यही हाल था।

बुकसेलर ने अन्दर भी एक अंधेरा कमरा ले रखा था—गुदाम के लिए। बाहर वाले कमरे मे तीन तरफ बडी-बडी रैक थी। दरवाजे के पास काउण्टर था। दो ऊची कुर्सिया थीं···बिकने के लिए रैकों में सजाई हुई किताबें स्कूली स्तर की थी या तो फिर जीवनी-सीरीज की छै आने वाली साधारण पुस्तकें थी।

साइनबोर्ड था—'साहित्य सौरभ ग्रन्थागार'।

बाहर से देखने पर लगता नही था कि किराये के भी पैसे वक्त पर दे पाते होंगे। मालिक का भाई और नौकर, बस। स्टाफ में तीसरा नहीं था कोई।

विभाकर के पिता, दिवाकर शास्त्री स्नेहपूर्ण इंगित पाकर कभी-कभी रुक जाते और पान के दो बीड़े ले लेते, बाकी उनका भी कोई रिश्ता नहीं था।

प्रोप्राइटर का नाम था तिलकधारी दास। वह प्रकाशन की कई

संस्थाओं में काम कर चुका था। पुस्तकें मंजूर करने वाली कमेटी के सदस्यों की पोल उसे अच्छी तरह मालूम थी। पाठ्य पुस्तकों का प्रबंध व्यापार···विभिन्न जिला बोर्ड के स्कूलों में 'स्टेशनरी' के नाम पर रद्दी माल की सप्लाई··बुनियादी तालीम के क्षेत्रों से चर्खों और चटाइयों तक का आर्डर बटोर लाना···ग्रामोद्योग के नाम घी, तेल और खादी का धंधा··बाबू तिलकधारीदास को जाने कितने कामों का तजुर्बा हासिल था। नेपाल से गांजा कभी ला सके थे कि नहीं, पता नहीं।

लगातार तीन रोज तक नाश्ता कर चुके तो दिवाकर जी को लगा कि इस उदीयमान 'प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता' की कुछ न कुछ नीयत जरूर होगी वर्ना विशुद्ध श्रद्धा तो बेहद सूखी हुआ करती है।

आखिर शास्त्री जी ने कहा, "दास जी, आप कुछ कहते क्यों नहीं? मेरे लायक कोई काम हो तो अवश्य कहें!"

दास जी ने रूमाल निकालकर मुंह पोंछा और बोले, "दो-दो फर्मे की आधी दर्जन किताबें तैयार कर दीजिए···आलू की खेती, आम का धंधा, बांस का व्यवसाय, बुनियादी तालीम, नदी-नियंत्रण, सोनपुर का मेला···बोर्ड की स्कूली लाइब्रेरियों में इन किताबों की खपत निश्चित है। अगले महीने तक चाहिए।"

शास्त्री जी रुचि के पत्रकार थे। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर निबंध लिखा करते थे। बाकी वक्त में अंग्रेजी-बंगला-उर्दू से कहानियों का अनुवाद। अभी आलू की खेती और आम का धंधा आदि के बारे में सुनते ही कानों को बुरा लगा, उबलने की तबीयत हुई। किन्तु नकद रकम पाने की तत्काल संभावना के चलते मन काबू में रहा···साहित्यकार का स्वाभिमान एक तरफ और लाभ की आशा में भूलने वाला दिमागी विवेक दूसरी तरफ···दोनों में खींच-तान होने लगी।

दास जी ने कहा, "कब तक दे रहे हैं?"

शास्त्री जी बोले, "अभी तो मुश्किल है, मगर···"

अन्दर ही अन्दर स्वाभिमान ने कहा, 'छिः, आलू की खेती पर किताब

लिखोगे ! लोग क्या कहेंगे ?'

'लोग क्या कहेंगे ! कुछ नही कहेंगे, हा, पैसा मिलना चाहिए,' गृहस्थी विवेक ने लाभ वाले पक्ष का अनुमोदन किया। दास जी ने कहा, "अगर-मगर कुछ नहीं, आपको यह काम करना ही पड़ेगा, महीने-दो महीने बाद ही सही !"

फिर आहिस्ता से कह गया, "दो सौ फौरन मिल जाएंगे···"

दिवाकर जी ने संयम से काम लिया, हा या ना कुछ नही निकला उनके मुंह से। पान के बीड़े गालो के अन्दर ठूसकर चुटकी-भर जर्दा फाक गए। दूकान से बाहर निकलते-निकलते उंगली से चूना चाट लिया।

मनबोधलाल ने आवाज लगाकर कहा, "हजूर, एक मिनट !"

मकान-मालिक शास्त्री जी को सामने पाकर बोला, "रुपये की किल्लत मे पड़ गया हू सरकार, दो महीने पूरे हो गए है।"

"अगले सप्ताह मिलेंगे," दिवाकर जी ने कहा, "इस बार जरूर हिसाब साफ कर दूगा मुशी जी !"

और अब ध्यान आया कि अस्सी रुपये मकान-मालिक को देने होगे, तो तिलकधारीदास का अनुरोध वरदान ही प्रतीत हुआ। सोचने लगे, 'सौ तिकड़म भिड़ाकर रकम बटोरता है तो क्या हुआ ? बेर-कुबेर मेरे जैसे बीस गरजमंद आदमी उसके सामने जा धमकते हैं, वह किसीको निराश नही लौटाता। सौ नहीं देगा, मगर पचास जरूर देगा। पचास नहीं देगा, मगर बीस-पचीस जरूर देगा। दस नही देगा, पाच जरूर देगा।··· तुम्हारी गाड़ी नही अटकी रहेगी, अपना कधा लगाकर वह उसे आगे ठेल देगा !'

सोचते-सोचते शास्त्री जी आगे चले गए।

तिलकधारीदास सहरसा और डाल्टनगज वाले बुकसेलरों से निबटने लगा। दर्जा आठ और दर्जा नौ की अधिकांश किताबें टेक्स्टबुक कमेटी ने छापी थी, लेकिन उनमे से कुछ-एक मिल नही रही थी। दास जी इन अप्राप्य पाठ्य पुस्तकों को दूर-देहात तक पहुंचा देने का इन्तजाम करते

थे और नाटकीय ढंग से।

शास्त्री जी का परिवार देहात जा चुका था। दो रूम और खाली हुए तो तिलकधारीदास ने उन्हें ले लिया था जिनमें दास जी की साली आ डटी थी। उसके दो जवान बेटियां साथ थी। कहते थे कि ये लोग भी बड़े अस्पताल में इलाज करवा रही थी···मा का आपरेशन होना था और लडकियां तीमारदारी मे थी।

ग्रामोद्योग भवन की कृपा से देहातिनें भी आधुनिकाएं दिखने लगती है। विमला और शीला के साथ ठीक यही बात हुई। अशिक्षा या अल्प-शिक्षा का पता जुबान खुलने पर ही लग सकता था! पोशाक और चलने-फिरने के लिहाज से वे कालेज की छात्राएं लगती थीं।

तिलकधारीदास इन दोनों पर काफी रकम खर्च कर रहा था। उन-पर *शान चढा रहा था। कभी सलवार-कुर्ती, कभी फ्राक-जंपर, कभी* साडी-ब्लाउज़ ··हर शाम को वे बदली हुई भूमिका मे नजर आती। कभी दास जी खुद और कभी उसका भाई छोकरियों को रिक्शे पर बाहर ले जाता। रात को लौटते-लौटते दस-ग्यारह का वक्त हो जाता, पड़ोसी सो चुके होते।

मीठापुर—कदमकुआ—बोरिंगरोड—बेलीरोड—दिवाकर जी ने उन लडकियो को बीच-बीच में कई जगहो मे देखा था और उन्हे बडा ही विस्मय हुआ था।

पन्द्रह-बीस रोज बाद उन्हे लेने-छोड़ने के लिए जीप पहुचने लगी ·· आखिर एक शाम कार भी आई और अगली शाम को छोड़ गई।

मुन्शी मनबोधलाल दूकान पर बैठे थे। *लड़कियां अन्दर जाने लगी* तो पूछ लिया, "कहां हो आई तुम लोग ?"

"राजगीर," उनमे से एक ने कहा। मुन्शी जी दूसरा सवाल करने ही वाले थे मगर वे अन्दर चली गई।

कम्पाउण्डर बैठा था। उससे नही रहा गया। बोला, "रूपनगर की राजकुमारियां है, सीधे मुह बात तक नही करती···"

मुन्शी जी की ओर झुककर कान में कुछ कहने लगा कम्पाउण्डर। तनती-सिकुड़ती भौंहें और फैलती-सिमटती आंखें तथ्य की गहनता का आभास दे रही थीं···

कान हटाकर मुन्शी जी ने कहा, "हमको यह सब नहीं मालूम था कम्पोटर साहेब, आज आप ही से सुन रहा हूं···अगर ऐसी बात है तो इनसे मकान खाली करवा लेना है···मगर ये तो बड़े ही शरीफ खानदान की लगती है बाबू जी ! आपको किसीने इनके खिलाफ भड़का तो नही दिया है कहीं ?"

"मैं दर्जा सात-आठ का स्कूली छोकरा नही हूं मुन्शी जी !" बाबू मुगेरीलाल ने तमककर कहा, "कि मामूली बुढ़िया पुराण और असली तिरिया चरित्र का फर्क नही समझूगा। और, आप तो मकान-दूकान छोड़कर कहीं जाते-आते नही ! हफ्ते में एक-आध बार हाट-घाट हो आते होगें, मानता हूं। मगर मेरी साइकिल तो जुगाली नहीं करती है बैठकर।"

मुन्शी मनबोधलाल उस वक्त तो चुप मार गए, अगले दिन दिवाकर जी से अकेले मे पूछा।

दिवाकर को उतनी जानकारी नही थी, माथा हिलाकर बोले, "दाल में काला-काला कुछ नजर आता है जरूर ! दास जी की माया दास जी ही जानें। रोज शाम को दो-चार घण्टे लड़कियां जाने कहा चली जाती है ! ···क्या कीजिएगा, छोड़िए भी ! किराया तो वक्त पर मिल ही जाता होगा ?"

"इसीसे तो चुप हूं," मुन्शी जी ने कहा, "इतना बढ़िया किरायेदार मुझे आज तक मिला ही नही शास्त्री जी !"

शास्त्री जी ने हंसकर कहा, "तो फिर जाने दीजिए, दुनिया को छेड़ने वाले हम-आप कौन होते है ?"

"मगर कल कुछ हो जाए तो ?" मकान-मालिक बोला।

"होगा क्या ?"

"मुझे तो शक हो गया है।"

"दो ही चार रोज की तो बात है, ये तो बस अब जाने ही वाली है।"

"तीन महीने के लिए लिया था मकान···"

"तो, मकान तो खाली भी रह सकता है न ?"

मुन्शी जी की समझ में यह पहेली समा नहीं रही थी और दिवाकर साफ-साफ कुछ बतला नहीं रहे थे। लगता था कि जानते हैं लेकिन बतलाना नहीं चाहते·· मनबोधलाल ने अपने को समझा-बुझा लिया और दूकान के अन्दर लौट आए।

चाय और लेमनड्राप खत्म हो रहे थे। नहाने का साबुन नहीं बचा था। अबकी अच्छी क्वालिटी के तीन अलग नमूने मंगवाने की बात दिमाग में आई। बिस्कुटों और चाकलेटों की खपत इधर दुगुनी हो गई थी। सूती और ऊनी स्वेटर भी रखने लगे थे···महीने के आखिरी दिनों में देशी ब्लेडों की मांग बढ़ जाती थी।

माल की खपत का अन्दाज लेकर मनबोधलाल रोकड़-बही ले बैठे। हिसाब-किताब ठीक रखने में भाजा मदद करता था फिर भी एक बार रोज़ अपना बही-खाता आदि से अन्त तक देख जाना उनके लिए प्रमुख नित्यकर्म हो गया।

बारह बज चुके थे, भूख लग आई थी। खाने के लिए ऊपर जाना ही चाहते थे कि एक बढ़िया कार आकर सामने रुक गई।

ड्राइवर नजदीक आया। गौर से मुन्शी जी की तरफ देखा और हुलसकर बोला, "प्रणाम मनबोधबाबू, जयमंगलसिंह का भतीजा हूं मैं सुमंगल। मोतिहारी में एक ही कमरे में रहते थे हमलोग। याद है न ?"

पुराने परिचय की नई झलक ने मुन्शी जी के चेहरे को चमका दिया मानो। आखें फैल गईं, होंठ के कोने फैल गए। लाल मसूडों में जमे हुए छोटे दांतों की कतार खिल उठी।

"कब से पटना हो ?" मुन्शी जी ने पूछा, "बिल्कुल बदल गए हो !

नहीं बतलाते तो पहचानना मुश्किल था सुमंगल ! ···गाडी किसकी है ?"

सुमंगल ने कहा, "यह मैं दूसरी बार गाड़ी लेकर आया हूं, उस रोज तो रात का वक्त था। मुझे क्या पता कि यह औरंगाबाद वाले हमारे उन्ही मनबोध चाचा का मकान है कि जिनके साथ पन्द्रह वर्ष पहले मैं रहा था। दर्जा नौ के बाद ही स्कूल छूट गया तो चाचा ने मोटर चलाने की ट्रेनिंग दिला दी और तभी से मशीन का पुजारी हूं। दो वर्ष हो गए यहां पटना मे। हमारे मालिक है गगा-पार के मशहूर जमीदार, दीघा मे कोठी बनवाई है अस्सी हजार खर्च करके···फिर कभी आऊंगा चाचा, अभी जल्दी है···दास जी के रिश्ते की दो लड़कियां हैं न अन्दर ? उन्हे कोठी पहुंचाना है···कोइलवर मे सोन के किनारे पिकनिक होगा, दो-तीन खेप में सभी वहां पहुंचेंगे···"

"ये लड़कियां क्या करेंगी वहां ?" मनबोधलाल ने पूछा। अन्दर ही अन्दर वह खुश हुए कि जानकारी के लिए अब सही सूत्र हाथ लगा है।

ड्राइवर बोला, "वाह ! सब कुछ इन्हीं पर तो है···इतना अच्छा गाती है कि···फिलिम के गीत·· आपको नही सुनाया है कभी ?"

मुन्शी जी ने मुस्कराकर कहा, "हमारे पास कार और कोठी कहा है सुमंगल !"

जवाब में सुमगल भी मुस्कराया।

मुन्शी जी ने अन्दर उन लडकियो को खबर करवा दी और इधर रास-लीला के बारे में सुमंगल से सुनते रहे। सत्ता और अवसरवादी राजनीति ने जिन पर नई कलई चढा दी है, जमीदारों के वे वंशज किस किस्म का नैवेद्य किस तरह स्वीकार करते हैं और फिर भक्तजनों की कामना किस रूप में फलती है, सुमंगल की बातों से मनबोधलाल को इस सिलसिले मे थोड़ा-बहुत मालूम हुआ।

कम्पाउण्डर ने ठीक ही बतलाया था कि इन्ही लड़कियों की बदौलत तिलकधारीदास की दो-तीन किताबें मंजूर होने जा रही थी।

५

उम्मी की मा सेकेंड हैण्ड सिलाई-मशीन रखे हुए थी। पास-पड़ोस के परिवारों से कपड़े बटोर लाती और सिल-सिलाकर वापस दे आती।

बड़े बालों वाला महिम कमशियल आर्टिस्ट था। पांच-सात प्रेसों से उसका सम्बन्ध था और कूची सधी हुई थी। स्कूली किताबों और बाल मासिक पत्रों के प्रकाशक उसकी कला पर मुग्ध थे। ढाई-तीन सौ रुपये कमा लेना कोई बड़ी बात नहीं थी। लेकिन पिछले कई वर्षों से महिम की तबीयत धंधे से उचट गई थी। बस, सौ-सवा सौ का काम करता था। बीच-बीच में सनक सवार हो जाती तो ज्यादा काम भी कर डालता। बाकी वक्त सिगरेट फूकना, मित्रों की गर्दन तोड़ना, ब्रिज खेलना, सिनेमा देखना, जासूसी उपन्यास चाटना और···

और दो-एक ऐसे काम भी महिम का वक्त लेते थे जिनके बारे में न बतलाना ही अच्छा है। दो दिन जो महिम के साथ रह लेता उसकी निगाहों से यह तथ्य छिप नहीं सकता कि क्यों एक कलाकार की प्रतिभा गोबर हो गई!

महिम ने निचले दो कमरे ले रखे थे, तीस रुपये भाड़ा देता था।

सुबह देर से बिस्तर छोड़ने की आदत थी।

उम्मी की मां कपड़े पर कैंची चला रही थी, फ्राक तैयार करने थे।

महिम ने निन्दासे स्वर में कहा, "पीठ दर्द कर रही है मामी!"

कैंची और कपड़ा एक ओर सहेजकर उम्मी की मा करीब आ गई।

दोनों हाथों से पीठ चापते बोली, "आठ बज रहे हैं, कब उठोगे? दानापुर जाना था न?"

"दस बजे जाऊंगा," महिम ने करवट बदलकर मुंह मामी की तरफ कर लिया और गुनगुनाने लगा:

> "जनम अवधि हम रूप निहारल
> तइयो नहि निरपित भेल···।"

मामी को लगा कि उसके ही रूप की वंदना कर रहा है महिम। चालीस की उम्र पार कर आई है तो क्या, अब भी उसका मुखमंडल भुलाने लायक नहीं है। एक बार दो-चार मिनट के लिए जो भी मर्द उम्मी की मा के सामने हो लेगा, किसी न किसी बहाने वह बार-बार आएगा···

मामी ने महिम के बालों में उंगलियां उलझा ली। सीने की समूची ताकत से उसे दबा लिया।

अब दोनों के चेहरे आमने-सामने थे। होंठों के दर्म्यान बस चार अंगुल का फासला रह गया था। सासें टकरा रही थी आपस में।

उम्मी की मां ने कहा, "दूधवाला आता होगा।"

महिम मुस्कराया, "आने दो···"

मामी ने होंठ बढा दिए, "बस, इतना काफी है इस वक्त···लो, उठने भी तो दो!"

और वह सचमुच अलग हो गई···

"बड़ी पाजी हो!" महिम ने कहा।

"लो, अब इससे बातचीत करो!" मामी ने माचिस और सिगरेट लाके थमा दिया। पूछ लिया, "स्टोव जलाऊं?"

"दूध तो आ लेने दो रानी जी!"

उम्मी की मां ने भौंहे चढ़ाकर महिम को देखा। मन ही मन लेकिन यह संबोधन घुलता रहा, गूजता रहा कानो के अन्दर···'रानी जी! रानी जी! रानी जी!'

उधर साकल में खटका हुआ।

उम्मी की मा ने जाकर दरवाजा खोल दिया। सामने कथाकार अशंक जी खड़े थे।

दोनो तरफ से मुस्कान और नमस्ते।

महिम ने कहा, "कहा मर गए थे!"

अशंक ने बतलाया, "नाना गए थे देह छोड़ने काशी! बाबा विश्व-

नाथ की कृपा तो हुई किन्तु इसमे काफी विलम्ब हो गया···। कल ही आया हू तीन महीने बाद। किसीसे नही मिला हूं, तुम्ही से मिलना था पहले···बताओ अब अपना हाल-चाल···"

महिम अब तक पूरी सिगरेट घूक चुका था। मामी से बोला, "चाय पीछे बना लेना, पहले चिवडा-मूगफली तल लो। खाना भी इनका यही होगा, मैं जाके सब्जी ले आऊंगा।"

खाने की बात का विरोध किया आगन्तुक ने, "बहुत सारे काम है, खाना कभी फिर खा जाएगे महिम।"

महिम ने दो सिगरेट निकाली। माचिस की जलती तीली अशंक की ओर बढाकर बोला, "तो शाम का खाना आज मेरे साथ खाना।"

"नही, आज नही," अशंक ने मजबूरी जाहिर की।

"इतने मे निबट आऊ?"

"हा, हा, हो आओ!"

"लो, तब तक लिटरेरी नाश्ता करो···"

महिम ने 'धर्मयुग', 'कहानी', 'दीपावली', 'सरिता' आदि कई पत्र-पत्रिकाए सामने रख दी।

स्टोव मे किरासिन डालते वक्त थोड़ा तेल नीचे गिरकर फैल गया था। महिम पाखाने से आया तो उधर नजर गई।

वह मामी पर बरस पड़ा, "कैसी गधी हो, फर्श को चौपट कर दिया···हजार बार कहा कि संभालकर स्टोव भरा करो मगर तुम हो कि कानो में रुई ठूसे बैठी हो···"

मामी आहिस्ता से बोली, "फिनाइल से धो दूगी फर्श···"

महिम का गुस्सा बेकाबू हो गया, "फिनाइल की नानी! हटो सामने से! खुदा बचाए ऐसी फूहड औरत से···"

अशक महिम की इस अशिष्टता पर क्षोभ के मारे घुटने लगा··· जरा-सा किरासिन फर्श पर गिर गया तो कौन पहाड फट पड़ा? मूर्ख कही का!

स्टोव जल चुका था।

उम्मी की मा ने पानी भरकर केतली चढा दी।

महिम का गुस्सा अभी गया नही था। लात से उसने केतली लुढका दी। स्टोव की आच सो गई। बरामदे मे पैर पटककर वह चीखा, "उल्लू की पट्ठी, मैं खुद ही चाय बना लूगा···"

"क्या बात है महिम ?" उधर से अशंक ने टोका।

महिम ने कहा, "कुछ नही, तुम मैग्जीन देखो···यह हमारा घरेलू मामला है अपना···"

अशक का मन अन्दर ही अन्दर बुलबुला उठा, 'ठीक ही तो कहते हैं लोग···महिम जैसा पतित पाटलिपुत्र की इस नगरी में दूसरा नही है। शराब और शराब और शराब···औरत और औरत और औरत···यह कौन होगी इसकी ? मामी ? सचमुच की मामी ? न, मामी नही होगी। इतना अपमान मामी तो नही बर्दाश्त करेगी।'

अशंक उठकर बाहर आया, बोला, "मैं अभी आया महिम, बस दस मिनट लगेंगे।"

महिम नटराज की तरह मुस्करा उठा, "नहीं, तुम नही आओगे! सच-सच बतलाओ, लौट आओगे दस-पन्द्रह मिनट मे ?"

अशंक ने सिर हिलाया। महिम ने सास खीचकर कहा, "अपना छकड़ा तो यों ही चलता है···अच्छा, तो फिर हो ही आओ!"

और फिर कान मे आहिस्ते से कहा, "मामी के लिए कोई काम खोज दो अशंक, नही तो यह मेरा दिमाग चाट जाएंगी।"

अशंक ने पूछा, "खादी का काम जानती हैं ?"

"करघा तो नही लेकिन चर्खा चला लेंगी।"

"पटना से बाहर पचास-साठ रुपये का काम मिले तो रहेंगी ?"

"क्या बात करते हो यार! क्यों नही रहेंगी ?"

अब की मुस्कराहट में महिम के होंठ फैले तो लकीरनुमा मूछोंकी इकहरी ब्रैकेट खिल उठी।

"अच्छा, देखेंगे ।"

अशंक वाहर निकल आया ।

वड़ी सड़क पर एक रेस्तरां मे वैठकर कचौड़ियों का आर्डर दिया ।

दिमाग लेकिन महिम और उसकी मामी की वातों मे ही उलझा रहा···महिम कलकत्ता रहा था, वनारस रह चुका था, भागलपुर-मुजफ्फरपुर की गलियों से भी परिचित था । खाते-पीते परिवार का युवक । जिससे शादी हुई थी उस औरत को छोडे कई वर्ष हो रहे थे । आठ-नौ साल का एक लड़का भी था । वे दोनों दादा-दादी के साथ रहते थे । महिम का मूड उनकी तरफ आइन्दा कभी मुलायम होगा, इसकी आशा नही रह गई थी किसीको ··सस्ती किस्म का दारू और ताडी पी-पीकर उसने अपनी तन्दुरुस्ती चौपट कर ली थी···आदर-सम्मान का तो सवाल ही नही उठता था···।

पीतल की छोटी थाली मे चार कचौड़ियां, आलू-गोभी का साग··· नेपाली छोकरे ने पूछ लिया, "अउर क्या लेगा वावू जी ?"

अशंक ने कहा, "फौरन दो रसगुल्ले दे जाओ, चाय पीछे लाना !"

नेपाली दूसरे-दूसरे ग्राहकों को पूछता हुआ चला गया ।

रसगुल्ले आए, फिर चाय आई । अशक ने सोचा, महिम के पास आधा घंटा बाद जाएगा । इतने में दो-एक मित्रों से और मिल आएगा ।

रेस्तरां से निकलकर पान के दो वीड़े लिये । कदमकुआं के लिए रिक्शा लिया और पानवाले से पन्द्रह आने रेजगारी ली ।

लौटने मे कुछ देर हो गई । महिम निकल चुका था ।

मामी ने स्वागत किया । वोली, "चाय तो पी ही लीजिए ।"

खौलने के लिए चाय का पानी स्टोव पर वैठाकर मामी नजदीक आई । अशंक वास वाली आराम कुर्सी पर वैठा था । मामी विना वांहों वाली कुर्सी पर वैठ गई । संजीदगी से मुस्कराकर कहा, "आपकी कहानियों का वह संकलन मैंने देखा है जो इलाहावाद में छपा था···"

"कैसी लगीं कहानियां ?" अशंक ने पूछा ।

"बहुत अच्छी," मामी बोली, "परिवार की डाल से चूकी हुई औरतों के प्रति आपकी हमदर्दी मुझे अनूठी लगी। अब आप मुझे भी अपने पात्रों में शामिल कर लीजिए···कल्पित पात्रों के प्रति जब आपकी सहानुभूति उतनी गहरी थी तो ज़िन्दा पात्रों की दिक्कतें आपसे भला कैसे देखी जाएगी ? मैंने आपके बारे मे महिम जी से काफी सुना है। मैं आपसे फिर मिलना चाहती थी। अभी देखा न ? ज़रा-सी भूल हुई कि गधी-सुग्रर-उल्लू बना डाला। अब इनके साथ मेरा निभेगा नही···आप कहीं कोई काम दिलवा दीजिए···"

'धर्मयुग' के पन्ने उलट रहा था अशंक। बीचोबीच दो पेजों मे घड़ियों वाली एक मशहूर कम्पनी का चटकीला विज्ञापन था। निगाहें अड़ गई, कान लेकिन पीडित महिला की आपबीती सुनना चाहते थे। और मन ? यह तो उपयोगिता के हिसाब से ही इस कथावस्तु को तौलने जा रहा था।

निगाहों को पन्नों मे उलझाए रखकर ही अशंक कह गया, "एक बार आपने बतलाया था, गोरखपुर के देहात मे आपका पूरा परिवार है। पति मौजूद है। तो फिर आप लौट क्यों न जाती है घर ? महिम तो आपको लाए थे इलाज करवाने, आठ-दस महीने हो गए न ?"

मामी स्टोव में हवा भर आई। लगा कि थोडा-सा खुलना चाहिए। बोली, "अब आपसे क्या छिपाऊं ? सोलह वर्ष की लड़की थी। वही हुई मेरी मुसीबत की जड़। पड़ोस मे दूसरी बिरादरी का एक नौजवान था, पढाने आता था उर्मिला को। गुपचुप दोनों उलझ गए। सब कुछ हो गया। हमे क्या पता कि उम्मी मां बनने को तैयार है। मैंने बड़ी कोशिश की कि दोनों ब्याह कर लें, नाहक एक जीव की हत्या तो न होगी। मगर लड़की के पिता ने नही माना, उन्हे बिरादरी वालों का आतंक था। समझा-बुझाकर उम्मी को अस्पताल ले गए और पेट साफ करवा लाए··· फिर चार-छै महीने के अन्दर ही चालीस-पैंतालिस के एक अधेड़ को छोकरी के गले मढ दिया···मैं राजी नही हो रही थी तो मुझे डण्डों से

पीटा गया, लगातार कई दिनों तक अंधेरी कोठरी में बन्द रखा गया। दाना-पानी बन्द, बात-चीत बन्द। बोले, 'शोर मचाओगी तो गला घोंट दूंगा।··' अब सोचती हूं कि मुझे खुद ही डूब मरना चाहिए था··· और तब जो मैं बीमार पड़ी तो बदन हड्डियों का ढांचा ही रह गया। दो-एक महीने बाद मर ही जाती मगर महिम जी पटना ले आए। पहले भी इस अभागिन पर इनका नेह-छोह था और पीछे तो जेठ की धरती पर आषाढ़ का बादल बनकर छा गए। रुपये-पैसे की किल्लत रहती है, आमदनी का रास्ता महिम जी के लिए सकरा है। हाथ खाली हो और हमेशा खाली ही रहने लगें तो दिल-दिमाग को लकवा मार जाता है। दया-माया, नेह-छोह सब कुछ सूख जाता है अशंक बाबू! देखा, कैसे चिड़चिड़े हो गए हैं! ···मैं लौटकर देहात की ओर नहीं जाऊंगी। और यह भी नहीं चाहती कि जीवन-भर इनका बोझ बनी रहूं···आप जैसे सज्जनों की कृपा रही तो मैं धन्य समझूंगी अपने को···"

पानी खौल चुका था। चाय तैयार हुई।

मामी प्याला आगे बढ़ाकर बोली, "चीनी आप कम लेते हैं, मैं भूली नहीं हूं।"

अशंक ने मुस्कराकर कहा, "और महिम!"

"वो तो चाय के नाम पर दूध-चीनी का गरम शर्बत ही पीते हैं।" मामी को हंसी आ गई।

६

'३० से '५६ तक·· लगातार बीस वर्षों तक खादी पहनी थी और अब रत्ती-भर भी आग्रह नहीं रह गया था उसके लिए। देवताओं की पूजा के समय साधकगण रेशमी वस्त्रों का इस्तेमाल करते हैं, ठीक उसी तरह दिवाकर जी खादी को काम में लाते थे। मिनिस्टरों और ऊंचे अधिका-

रियों के यहा जाने से पहले खादी की याद आती थी। सेनाओं-समारोहों मे पुराने मित्रो के बीच खादी का पहनावा त्याग और गौरव का सौरभ फैलाता था। गांधी-जयन्ती के अवसर पर अक्तूबर मे फी रुपये इकत्तीस पैसे की छूट ध्यान को बरबस खादी की ओर खीचती थी · और दो-एक कारण और थे : परिचय दस-बीस साल का पुराना था, इसीसे खादी-भंडार वाले उधार पर भी कपडे दे देते थे, 'नुकसान माल' वाले स्टाक से ऊनी और अंडी माल मेहरबान मित्रों की बदौलत घर आ जाते थे।

ग्रामोद्योग संघ वाली दूकान से कश्मीरी पट्टू लेकर बंगाली दर्जी 'मित्रा एण्ड सन्ज' से कोट तैयार करवाया था। आज वही पहनकर निकले सम्पादक जी।

भारत काफे मे मसाला-डोसा लिया, काफी पी।

पान के दो बीड़े और वेली रोड। रिक्शा बाई ओर हाते के अन्दर आया।

क्यारिया क्या थी, धरती पर रंग-बिरंगे स्कार्फ फैले थे। अन्दर बगले तक गोल रास्ता, लाल रंग की पथरी बिछी थी। चारों ओर बाग थे।

बरसाती के करीब रिक्शा रुका।

दुअन्नी के लिए रिक्शेवाले से झड़प हो गई सम्पादक जी की।

आखिर दस आने सीट वाले गद्दे पर रखकर दिवाकर ने कहा, "अब और एक धेला भी नहीं मिलेगा · "

"तो यह भी लेते जाइए!" रिक्शावाला बोला। मगर दिवाकर जी तीन सीढ़ियां ऊपर चढकर बरामदे मे दाहिनी तरफ पी० ए० (पर्सनल असिस्टैण्ट) वाले कमरे के अन्दर जा चुके थे।

रिक्शावाला नौजवान था। तैश मे ऊपर चढ़ आया। कमरे के अन्दर झाकने ही वाला था कि चपरासी ने रोक दिया, "नही-नही, इधर नही।"

"वाह क्यो नही! मेरी दुअन्नी नहीं मिलेगी?"

चपरासी हाथ पकड़कर उसे बरसाती के बाहर ले आया। पीठ पर हाथ फेरता हुआ आहिस्ता से बोला, "नही देना चाहता है तो अब तुम

उसका क्या कर लोगे ? मिनिस्टर की कोठी है, जोर-जबर्दस्ती नहीं चलेगी यहां···जितना मिला, उसीमें संतोख करो बेटा।···जाओ !"

"सफेदपोश डाकू," रिक्शावाले ने थूककर कहा, "कसाई कहीं का ! किस सफाई से गरीबों का गला काटता है ! और, अन्दर कुर्सी पर बैठकर नानी को फोन कर रहा होगा···"

चपरासी उसे चुप रहने का और बाहर निकल जाने का इशारा दे रहा था मगर धोखा खाए हुए मजदूर की जबान रुकना नहीं चाहती थी। अधेड़ चपरासी को वैसे पूरी हमदर्दी थी रिक्शावाले के प्रति। वह चाहता था कि बात खत्म हो। उसने फुसफुसाकर कान में कहा, "सड़क पर कहीं दिखाई पड़े तो पकड़ना, यहां देखते हो न, मिलिटरी का पहरा है···"

रिक्शावाला गंभीर स्वर में बोला, "मगर चाचा, यह तो भारी जुलुम है न ? कम से कम मिनिस्टर के यहां तो बेइन्साफी नहीं चलनी चाहिए !"

"अभी तुम बच्चा हो," चपरासी मुसकराया, "अरे, इन्हीं कोठियों के अन्दर तो अन्याय पनाह लेता है आकर ! सरकार अभी इन्हीं कोठियों और बंगलों में कैद है, उसे तुम तक पहुंचने में दस-बीस वर्ष लग जाएंगे अभी !"

समझा-बुझाकर और चुमकार-पुचकारकर चपरासी ने रिक्शावाले को रवाना किया।

सम्पादक जी मंत्री महोदय से बातें कर रहे थे, ऊपर दुतल्ले पर। मुलायम कुर्सियां, गद्देदार कोच, मोटे कोचों वाली गोल-गोल नफीस तिपाइयां। दीवार पर एक ओर बापू, दूसरी तरफ विनोबा। बाहर खिड़कियों और दरवाजों में काटेज इंडस्ट्री के कीमती चटकीले पर्दे झूल रहे थे।

बातों का सिलसिला अयूब खां, दिल्ली की भारत प्रदर्शनी, राष्ट्रसंघ में मेनन का भाषण आदि को छूता हुआ पत्रकारिता पर आ गया। दो अंग्रेजी दैनिक थे राज्य में। एक सरकार का पूरा साथ दे रहा था, दूसरा तना हुआ था क्योंकि उसका दक्षिणी सम्पादक स्वाभिमानी था। मुख्यमंत्री

के गुट वाले उसे सनकी कहते थे।

दिवाकर जी अपने मतलब की बात पर आ गए, "आठों लेख छप चुके हैं, चार और ले आया हूं। इन्हे बिहार के बाहर छपने के लिए लिखा है।"

टाइप किए हुए चारों लेख मंत्री जी के हाथों में आ गए। उन्होंने प्रसन्न आखो से देखा, 'बिहार की सांस्कृतिक देन', 'बौद्धधर्म और बिहार', 'भारतीय दर्शन के विकास मे बिहार का स्थान', 'संस्कृतियों का संगम-स्थान बिहार'—चारों शीर्षक मंत्री जी को अच्छे लगे।

मंत्री जी ने काले रंग की 'माउंट ब्लैक' पेन निकाली और शीर्षकों के नीचे अपना नाम बैठा दिया…सोचा, कितने चाव से लोग इन्हें पढेंगे! इस राज्य के एक शासक की विद्वत्ता का लोहा उन्हें मानना ही पड़ेगा… और पाच साल के बाद भी लोग मुझे याद रखेंगे…कीर्तिर्यस्य स जीवति!

दिवाकर जी ने कहा, "बीस-पचीस हो जाएं तो इनका संकलन पुस्तक के रूप मे निकल आएगा। प्रकाशक तो अभी से तैयार बैठा है। आप भी उसे पहचानते हैं।"

"कौन?" मंत्री जी ने जम्हाई लेकर पूछा।

दिवाकर जी बोले, "तिलकधारीदास…और कौन है वैसा भक्त आपका? मैंने तो कह दिया है कि अगले वर्ष मिलेगा। छपाई लेकिन कलकत्ते की रहेगी। मान गया है जानकी बाबू!"

आनरेबुल मिनिस्टर जानकी बाबू का चेहरा खुशी में चमक उठा, कहने लगे, "दिवाकर जी, आपने ठोंक-पीटकर मुझे साहित्यकार बना दिया! देखिए न, उत्तर प्रदेश की एक साहित्यिक संस्था ने अपने वार्षिक समारोह का उद्घाटन मुझसे करवाना चाहा है…उन्हें क्या पता कि जानकीनाथ साइन्स का स्टूडेण्ट था…बतलाइए, अब मैं क्या करूं?"

"स्वीकृति का पत्र फौरन भिजवा दीजिए," दिवाकर जी ने चुटकी बजाकर कहा, "मैं नीचे सेक्रेटरी साहब से कह के अभी पत्र भिजवा देता हूं…"

जानकी बाबू का माथा फिक्र मे हाथ पर टिक गया। सोचने लगे, उद्घाटन वाला भाषण दिवाकर जी पहले ही तैयार कर लेंगे और वह छपवा भी लिया जाएगा। लेकिन समारोह के समय वहा के साहित्य-प्रेमियो से मैं बातचीत क्या कर पाऊंगा? राजनीति की तरह साहित्य को भी अपनी समस्याएं होगी और मैं उन्हे क्या समझूगा?···लोग मुझे बौडम कहेंगे!···"

मत्री महोदय युवक थे और लाज-शरम अभी कुछ शेष थी, उन्होंने उद्घाटन वाला निमत्रण कबूल नही किया। दिवाकर ने बहुत जोर दिया मगर वे राजी नही हुए।

दस-दस के बीस नोट मंत्री ने थमाए तो दिवाकर की तबीयत खिल गई। खानसामा दालमोठ-समोसे और रसगुल्ले रख गया था। मत्री जी का इंगित पाकर दिवाकर जी उधर झुक गए।

जरा देर बाद काफी के दो प्याले आए।

काफी पीते समय बातें भी चलती रही। "लोगों मे नैतिकता का अभाव हो गया है," दिवाकर जी ने कहा, "नैतिकता का रोना तो सभी रोते हैं किन्तु अमल के वक्त सबकी आंखे मुद जाती है···"

जानकी बाबू बोले, "हमारी आखें मुंदती तो नहीं लेकिन आखें खुली रखकर भी बाज वक्त हम मजबूर होते हैं ··"

"हूं" दिवाकर जी ने अनमनेपन का अभिनय किया। मन ही मन बोले 'मैं लेख लिखता हू, वे आपके नाम से छपते है और मैं आपसे रुपये पाता हूं···आपको भी अच्छा लगता है और मुझको भी अच्छा लगता है।'

"लेकिन दिवाकर जी," मंत्री जी ने बात की कड़ी जोडी, "तीसरी पंचवार्षिक योजना के सफल होते-होते हमारे देश की कायापलट हो जाएगी। आर्थिक विकास के बाद राष्ट्र का एक-एक व्यक्ति नैतिकता का प्रहरी होगा और तब हमारे सारे सपने पूरे होंगे···"

फोन की घण्टी बज उठी तो मंत्री महोदय ने उधर हाथ बढाकर रिसीवर उठा लिया···

राज्यपाल नेपाल-नरेश के सम्मान में चाय-पार्टी दे रहे थे परसों, उसीमें शामिल होने का अनुरोध था···

जानकी बाबू ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया और फोन रख दी। पश्मीने का स्लेटी रंग वाला कुर्ता···चंदन की मैसूरी बटन के चारों दाने···सोने की नगदार अंगूठी···नीचे पैरों के पास चीनी माटल की चप्पलें···कुल मिलाकर मंत्री महानुभाव अधिकाधिक भव्य लग रहे थे। पास वाली गोल तिपाई पर अंग्रेज़ी के पांच-सात दैनिक पड़े थे। कोने के बुकशेल्फ पर अपनी क्लासिक मुद्राओं में 'तीन बंदर' मानो इधर ही रुख किए हुए थे।

दिवाकर अभी कुछ देर और बैठते लेकिन उन बंदरों ने ही शायद उन्हें मना किया। मत्री जी को नमस्कार करके निकल आए।

बेली रोड के नुक्कड़ पर पान की दूकान थी। चार बीड़े पान, चुटकी-भर जर्दा और चूना···रिक्शा बिना बुलाए ही सामने आके खड़ा हो गया था।

दिवाकर जी लौटे तो मुंशी मनबोधलाल कुतिया के बच्चों की निगरानी कर रहे थे। दूकान के नीचे, सड़क के किनारे बोरी बिछा दी थी। दोनों पिल्ले आराम से लेटे थे और पूस की दुपहरी में धूप सेंक रहे थे। कुतिया आश्वस्त थी, पास ही खड़ी पूछ हिला रही थी। बीच-बीच में ओठों पर पतली जीभ फेर लेती थी।

दिवाकर को यह दृश्य अद्भुत लगा, बरबस खड़े हो गए।

मुंशी जी ने कहा, "क्या देख रहे हैं सम्पादक जी ?"

"नर्सरी देख रहा हू आपकी," दिवाकर बोले और मुस्कराते रहे। निगाहें बारी-बारी से कुतिया पर, पिल्लों पर और उनके आश्रयदाता पर पड़ रही थीं।

मनबोधलाल का भांजा दूकान के अन्दर से बोला, "यह एक अच्छा खटराग पाल लिया है मामा ने ! इन्सान भी जच्चा-बच्चा का इतना

ख़याल नही रखता है'''बुढउती में मामा का दिल कितना मुलायम हो गया है !"

गर्दन सहलाते-सहलाते दिवाकर ने कुतिया की ओर दाहिना हाथ उठाया, कहने लगे, "यह तो साल-भर बीमार थी ! देखो न, समूचे बदन पर बाल नही उग सके है अब भी ! कुत्तो की विरादरी में अगर कही कोई बदसूरत भिखारिन रही होगी तो बस वह यही है'''मैने समझ लिया था कि मर गई होगी, गीध और स्यार नोच-नोचकर खा गए होगे'''लेकिन यहा तो ठूठ में से कोपलें निकल आई है, वाह रे विधाता के चमत्कार !"

कुतिया पिल्लों को छेड़ना चाहती थी मगर मुन्शी जी उसे रोक रहे थे। मकान के छज्जे की छाह बोरी का पीछा कर रही थी लेकिन मनबोधलाल धूप की तरफ बढा देते थे। लगता था कि कुतिया का पेट भरा हुआ है। वह पिल्लों को छोड़कर अलग जाना नही चाहती थी और न मुन्शी जी ही उसे भगाना चाहते थे। शोख और सयानी बेटी की तरह कुतिया उनके इर्द-गिर्द मडरा रही थी। वह बैठे हुए थे। मुंह के अन्दर सुपारी का टुकडा था, जबडों मे हरकत थी। निगाहें ममता मे डूबी हुई। चेहरे पर स्वाभाविक खुशी और तरल गंभीरता।

कुतिया अपने बच्चों के प्रति मुन्शी जी की इस ममता को अच्छी तरह समझ रही थी। कृतज्ञता के तौर पर वह उनकी बाहों को, घुटनों को, पीठ को, पैरो को सूघ लेती थी रह-रहकर। एक बार उसने मनबोधलाल की कलाई चाट ली तो बेचारी को झिड़की खानी पडी !

दिवाकर दस मिनट खडे रहे दूकान के पास। मुन्शी जी का भाजा उनसे बातें करता रहा।

अन्दर जाने लगे तो मुन्शी जी ने कहा, "बच्चे तो सब के बराबर होते हैं न सम्पादक जी ? बस, दस-बीस रोज की कसर है। फिर तो दोनों पिल्ले ख़ुद ही उछलते फिरेंगे। नही सम्पादक जी ? मैं ठीक कहता हूं न ?"

भाजे को हसी आ गई, बोला, "और कुतिया को दोनों जून भात और मसूर की दाल खिलाते हो। लो, अब हर साल अगहन-पूस मे खिदमत

करते रहो साली को···ना, मैं नही चलने दूंगा मिशनरी का यह सेवा-श्रम···नाव पर चढाकर मैं इसको गंगा के उस पार सबलपुर के दियारे मे छोड़ आऊगा सम्पादक जी !"

"सुन ली मुन्शी जी आपने ?" दिवाकर ने गर्दन घुमाकर कहा। उनका एक पैर मकान के सदर फाटक के अन्दर पड़ चुका था। भूख लग आई थी लेकिन मनबोधलाल की ममता का जादू दिमाग पर छा गया था···यह मक्खीचूस और जाहिल आदमी अपने अन्दर ऐसा बढ़िया दिल छिपाए हुए है ! ·· पथरीले मैदान के अन्दर मीठे पानी का यह स्रोत ! ··· दिवाकर मनबोधलाल की ओर देख रहे थे।

भांजे की बात का जवाब नहीं दिया मुन्शी ने और न घूमकर दिवाकर की तरफ देखा ही।

वे बारी-बारी से पिल्लो की पीठ और गर्दन सहला रहे थे।

७

कल देवर आया था और दिन मे ग्यारह से चार बजे तक बातें करता रहा।

आज कम्पाउण्डर की बीवी बेहद खुश नजर आ रही थी।

मछली मगवाई थी आधा सेर, डेढ रुपये की। मुंगेरीलाल को यह अच्छा नही लगा। बोला, "पन्द्रह तारीख के बाद बाजार से रुपये-दो रुपये की चीज़-वस्त मत मंगवाया करो, हाथ खाली रहते है न ?"

बीवी सरसों पीस रही थी, मछली के झोल में डालने के लिए। झमककर कहा, "अपनी जेब तो देख ली होती···किसीके पैसे नही छुए हैं मैंने !"

"अच्छा बाबा, जल्दी करो !" कम्पाउण्डर साइकिल की झाड-पोंछ में लगा था, झल्लाकर बोला।

"कै बजे है ?"

"सवा नौ। वक्त नही रह गया है अब।"

"तो आओ न !"

उसे मालूम था कि अभी इन्हे पन्द्रह मिनट लग जाएंगे, तब तक मछली का झोल तैयार हो जाएगा। पत्थर के कोयले की आंच में यही तो खूबी है कि पकने-सीझने मे देर नही लगती।

रेहू मछली मुगेरीलाल को प्यारी थी। खाने बैठे तो छै टुकड़े खा गए। भिंडी की भाजिया थी, छुई तक नही।

पान की गिलौरी मुह के अन्दर दबाकर साइकिल संभाली और बाहर निकल आए बाबू मुगेरीलाल।

घरवाले से फुर्सत पाकर कम्पाउण्डर की बीवी ने चूल्हे पर पानी-भरा पतीला बैठा दिया। कई रोज़ से नहाई नही थी और दो-तीन हल्के कपड़े भी साफ करने थे। पति की जूठी थाली मे ही माछ-भात परोस लिया। साढ़े दस बजे यह उसका 'ब्रेकफास्ट' था।

भुवनेसरी आ धमकी, पूछा, "गगा आज भी नही गई जीजी ?"

"काफी देर लग जाती है," भरे गालो वाले मुंह से मोटी आवाज़ का जवाब आया। वह खा रही थी।

"तो हम साथ नहाएंगे !"

"इसी बाथरूम मे ?"

"हां, इसीमे। क्यों, तुमको शरम लगेगी ?"

"नही, छोटा है बाथरूम।"

"दिल मे तो बैठा लोगी न ?"

कम्पाउण्डर की बीवी को भुवन के इस सवाल पर शरारत सूझी। बायें हाथ से उसने भुवन को पास बुला लिया। कान से मुह लगाकर कहा, "अच्छा होता कि मैं तेरा मर्द होती···"

"उह···" भुवनेसरी ने उसके गाल मे चिकोटी काट ली।

कम्पाउण्डर की बीवी खा चुकी थी। मछली का एक अच्छा-सा

टुकड़ा बाकी बचा था। उसमे से आधा तोड़कर भुवनेसरी के मुह मे ठूस दिया उसने, बोली, "ले, खा भी तो! यह चीज बैकुंठ मे भी नही मिलती है भुवन!"

भुवन ने गर्दन घुमाकर दरवाजे की ओर शकित दृष्टि से देखा, "नही, कोई नही देख रहा है। बुआ? बुआ तो सो रही है। वह यहा कहा से आएगी! कोई नही देख रहा है भुवन, बल्कि वह दूसरा आधा टुकडा भी ले सकती हो!..."

हाथ-मुंह धोते-धोते भुवन ने बतलाया, "मैं बचपन मे मछली खाती थी, बाद मे उन लोगों ने कसम देकर छुड़वा दिया।"

"ससुराल वालों ने?"

भुवनेसरी चुप रही। उसे पछतावा होने लगा कि क्या से क्या निकल गया जुबान से! बुआ ने मना किया था न? ठीक ही मना किया था। ज्यादा मेल-मिलाप दिल को घुला डालता है...भुवनेसरी लाख अपने को समझाती है, लाख धमकाती है अपने को! मगर मन नही मानता। कम्पाउण्डर की बीवी क्या कोई मामूली डायन है? ऐसा जादू कर दिया है कि न मन को चैन न तन को चैन! मदारी की तरह उसने भुवन को अपने काबू मे कर लिया है, उसके बिना भुवन रह ही नही सकती...तो, आहिस्ता-आहिस्ता क्या वह भुवन की सारी बातें मालूम कर लेगी?... डर के मारे भुवनेसरी को पसीना आ गया।

पान की दो गिलौरिया बनाई। एक अपने लिए, दूसरी भुवनेसरी के लिए। कम्पाउण्डर की बीवी पान की शौकीन तो थी ही, जर्दा भी फाकती थी। घरवाला लेकिन सिग्रेट थूकता था।

भुवनेसरी पर कम्पाउण्डर की बीवी को दया आने लगी थी। अब वह भुवन के मर्म तक पहुंचना चाहती थी, उसकी व्यथा के बारे मे जानना चाहती थी। बुआ और चाचा के सिलसिले मे उसने अब ज्यादा से ज्यादा सोचना शुरू कर दिया था। भुवनेसरी के प्रति अब वह ज्यादा से ज्यादा हमदर्द हो गई थी। ईर्ष्या और द्वेष के बदले ममता और प्यार छलकने

लगे थे।

बुखार चढ़ा था तो भुवनेसरी खाना पका गई थी। कम्पाउण्डर को होटल में नही खाना पडा था। सारा दिन इसी घर मे रही थी, गिरस्ती के छोटे-मोटे सभी काम किए थे।

दूसरे परिवार में इस तरह भुवन का घुलना-मिलना बुआ को पसन्द नहीं था। लेकिन न तो कम्पाउण्डर की बीवी से रहा गया और न भुवन से। साधारण परिचय अब गाढी आत्मीयता मे बदल रहा था। कई बार दोनो साथ सिनेमा देख आई थी। बुआ ने भी टोकना छोड दिया था। उसे कम्पाउण्डर की बीवी घूस के तौर पर बाजार से चटोरी चीजें ला देती थी। घण्टो बैठकर गप्पें लड़ाती और पास-पड़ोस के बारे में गलत-सही सूचनाएं पहुचाती।

भुवनेसरी की पीठ के निशानों के बारे में कम्पाउण्डर की बीवी ने फिर पूछ दिया, "महात्मा ने पीटा था या राक्षस ने ?"

आज वह कुछ नही बोली, चुप रह गई। सोचने लगी, 'अब खुलने में कोई हर्ज नहीं है।'

सहानुभूति से लगातार सींचा हुआ हृदय ही वह भूमि है जहां विश्वास का अकुर फूटता होगा···

बाथरूम से पेटीकोट पहने बाहर निकल चुकी थी दोनो। कम्पाउण्डर की बीवी ने ट्रंक से दो साड़िया निकाली। एक साड़ी मद्रासी थी, दूसरी बंगाल के हैडलूम की। मद्रासी साड़ी भुवन को थमाती हुई वह बोली, "मेरी कसम, ना मत करना! बस पहन ही ले! मेरे कोई बहन नहीं थी, अब आज से तू बहन हुई मेरी! समझा न ?"

ऐसा अपनापा! इतना प्यार !···भुवनेसरी की आखें गीली हो आई, होठ फड़कने लगे। एक भी अक्षर मुंह से निकल नही पाया। विह्वल मुद्रा मे वह दो मिनट खड़ी रह गई।

कम्पाउण्डर की बीवी का मायके का नाम था निर्मला। प्यार में लोग 'नीरू' कहते थे। यह सब एक बार वह भुवन को बता चुकी थी। इस

समय लेकिन वह दीदी की विशुद्ध भूमिका मे विराजमान थी—सगी बहन की गाढ़ी ममता उसकी निगाहों से छलक रही थी।

भुवन को पशोपेश मे देखकर वह आगे बढ़ आई, बाहों मे लेकर छाती से लगा लिया। भीगी आवाज मे कहने लगी, "ठीक है कि मैं तेरे लिए ज्यादा कुछ कर नही सकती, मामूली हैसियत है हमारी। लेकिन तुझे मैं सगी बहन का प्यार ज़रूर दे सकूंगी···जाने किन मुसीबतो ने तुझे यहा तक पहुचाया है! जाने किस्मत तुझे कहा-कहा भटकाएगी! एक बार विछड़कर फिर दुबारा जाने हम कब मिल पाएगे!···"

नीरू ने ठुड्डी उठाकर भुवन का चेहरा देखा। उसकी आंखों से आसू बहे जा रहे थे। हाथों से साड़ी थामे थी, जिसकी ऊपरी तह जगह-जगह भीग गई थी···लंबी-छरछरी सुडौल देह, गोल गर्दन, गठी हुई बाहे··· घुटी हुई रुलाई ने चौड़े कंधो मे सिकुड़न पैदा कर दी थी···

अपनी साड़ी के पल्ले से भुवन के आसू पोंछते-पोंछते बोली, "पगली कही की, इस तरह रोया नही करते! कभी कुछ बताया भी तो नहीं तूने! चाहे कैसी भी है, मेरी बहन है तू···"

सूखने के बदले आसू और भी वेग मे आ गए। अब तक की घुटी हुई रुलाई हिचकियों के रूप में फूट निकली। भुवन ने निढाल होकर अपना सिर नीरू के कंधे पर डाल दिया।

नीरू ने ले जाकर उसे पलग पर बिठाया और दरवाजा बन्द कर आई।

भुवन ने उठकर साड़ी पहन ली। मुंह धो आई और दीवार की खूटी मे लटकते आईने के सामने खड़ी हुई। बड़ी-बडी आखे आसू बहाते-बहाते सुर्ख हो गई थी। बरौनियों के छोटे-छोटे मुलायम बाल बड़े और कड़े दीख रहे थे। पपोटों पर बारीक नसें उभर आई थी। कपार की मोटी नसों मे कम्पन मौजूद था। चेहरे का रंग मानो अब तक चिढा था।

कघी ले आई और बाल सवारने लगी।

निर्मला ने कहा, "ला, मैं संवार दूं!"

भुवनेसरी ने माथा हिलाकर इन्कार किया, बोली, "लपेटकर बाध लूगी।··" क्षण-भर बाद गभीर हो गई। पलकें उठाकर कहा, "दीदी, तुम मुझसे अलग ही रहती तो अच्छा था। मैं अभागिन हूं, जीवन-भर अभागिन ही रहूंगी। अदेशा इसी बात का है कि मेरी बदनसीबी कही तुमको भी न छू ले।···जिसे भुवन कहती आई हो वह भुवन नही, इंदिरा है। पिताजी ने इंदिरा रखा था मेरा नाम···दीदी, तुम भी मुझे इंदिरा ही कहा करो ! बोलो, कहोगी न इन्दिरा ?"

"हा, अब से इन्दिरा ही कहा करूंगी।" नीरू बोली।

"लेकिन अकेले मे।"

"हा, अकेले मे।"

"दीदी भी अकेले मे ?"

"हा, अकेले मे।"

खट्-खट्-खट्-खट्।

"देखती हू, कौन है···इन्दिरा, तू जल्दी मे तो नही है ?"

"नही दीदी, देखो कौन है।"

कम्पाउण्डर की बीवी ने दरवाजा खोला। सामने डाकिया खड़ा था। बगल मे चमडे का थैला···आंखों पर चश्मा, कान की जड़ मे पीली पेन्सिल लगी थी।

"रजिस्ट्री है···बाबू मुंगेरीलाल—दसखत करके आप ले लीजिए, दसखत नही करेंगी तो कैसे मिलेगा ?"

वह वापस अन्दर हुई, भुवनेसरी से पूछा, "कर दूं दसखत ?"

"तो क्या हर्ज है इसमे !" भुवनेसरी ने भौंहे कड़ी करके उसका साहस बढाया, "एक-आध हरफ की गलती हो फिर भी दस्तखत करके रजिस्ट्री ले लो, जरूरी है तभी तो रजिस्ट्री आई है दीदी !"

आखिर कम्पाउण्डर की बीवी ने एकनौलेजमेंट वाली स्लिपपर हस्ताक्षर किया···निमला देवी। डाकिया मुस्कराया, देवी जी ने अपने नाम मे 'नि' के बाद आधा 'र्' छोड़ दिया था, जल्दबाज़ी मे। खैर, रजिस्ट्री

चिट्ठी मिल गई।

खोलकर देखा, मायके का खत था। फागुन सुदि पंचमी बुधवार··· छोटे भाई की शादी है···

"जाना ही पड़ेगा," नीरू बोली, "इन्दिरा, तू भी चलना साथ। तेरी तबीयत बहल जाएगी और तेरी वजह से मैं जल्दी वापस आ सकूंगी।"

भुवन ने कहा, "और बुआ ?"

"झाड़ू मार इस बुआ को !"

"मच·! वह मुझे जाने देगी ?"

"तू हा तो कर पहले !"

"मेरे हा करने से क्या बनेगा दीदी ?···"

"और तेरी दीदी क्या कोई तदबीर नही भिड़ा सकती ?"

भुवनेसरी को ध्यान आया, दीदी ने दरवाज़ा खुला ही छोड़ दिया है। वह जाकर साकल चढा आई। कम्पाउण्डर की बीवी ने आदि से लेकर अन्त तक कई बार खत को पढा। फिर भी तसल्ली नही हुई तो बोली, "ले इन्दिरा, सुना तो पढकर !"

समूची चिट्ठी सुनाकर भुवनेसरी ने कहा, "वाह, लिखावट कैसी बढ़िया है ! किसने लिखा है दीदी ? तुम तो जरूर पहचान गई होंगी···"

"लो, मै ही नहीं पहचानूंगी···" दायें हाथ की दूसरी उंगली को ठोडी मे धंसाकर वह बोली, "मझले भइया की घरवाली दर्जा दस तक पढी-लिखी है न ! मा ने उसीसे लिखवाया है। मेरे मायके में इतनी अच्छी लिखावट किसीकी नही होती, एक नागेसर को छोडकर। और वह नागेसर ? पढा-लिखा है लेकिन गांव नही छूटता है उससे। पाटी का काम करता है। घर में एक पैसा भी नहीं दिया है आज तक। आदमी लेकिन हीरा है···इन्दिरा, मैं तुझे उससे जरूर मिलाऊंगी। जरूर।"

बी॰ एन॰ शर्मा।

हाँ, फाटक वाले दरवाजे पर चाक से यही नाम लिख दिया था किसीने। और भुवनेसरी का 'चाचा' सचमुच इसी नाम से हस्ताक्षर करता था—बी॰ एन॰ शर्मा—उसका पूरा नाम क्या है, सबको मालूम नहीं था। लोगों से मिलना-जुलना भी उसका कम ही था। हाँ, तिलकधारीदास की दूकान उसके लिए परिचित जगह नहीं थी। दास जी के साथ रिक्शे पर भी शर्मा को कभी-कभी देखा जा सकता था।

मुन्शी जी अपने इस किरायेदार के भी प्रशंसक थे। किरायेदार की भलमनसाहत का एक ही मापदंड मनबोधलाल का था: ठीक दूसरी तारीख को पूरी रकम थमा दे। बेशक, ऐसा वही करेगा जो सरकारी सर्विस में होगा। यूनिवर्सिटी, हाईकोर्ट, दरभंगा के महाराजा का 'इंडियन नेशन' वाला दफ्तर···वक्त पर वेतन देने वाली संस्थाओं में इनकी भी अच्छी शुहरत थी। बाकी जगहों में काम करने वाले लोगों के बारे में मुन्शी जी को तसल्ली नहीं थी। इसीलिए कमरा या खोली देने से पहले किरायेदार से वे बीस किस्म के सवाल करते थे। पत्रकारों, कलाकारों, कवियों, साहित्यकारों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं से कतराना मनबोधलाल का स्वभाव हो गया था।—ठीक वक्त पर किराया देने वाले उनकी निगाहों में शराफत के पुतले थे। और जो दो-दो, तीन-तीन महीनों का एडवान्स थमा दे, वह तो मनबोधलाल का मसीहा था। शर्मा और दास जी मामूली किरायेदार नहीं थे, सर्वगुण-सपन्न मसीहा थे उनके लिए।

शर्मा अभी पन्द्रह-बीस रोज बाद वापस आया था। साथ एक युवती और थी, शकल-सूरत से नेपाल की लगती थी लेकिन मैथिली सर्राटे से बोलती थी।

भुवनेसरी को समझते देर न लगी कि रिश्ते की यह 'बहन' किस मतलब से लाई गई होगी। वह नेपालिन से अकेले में मिलना चाहती थी,

बातें करना चाहती थी। मगर मौका ही नहीं मिलता था। हमेशा उसे बुआ की निगरानी में रखा जाता था।

कमरे थे तीन, बरामदा एक था। नीचे वाला एक कमरा बुआ ने दखल कर रखा था। ऊपर शर्मा खुद रहता था। बाईं तरफ वाले कमरे में घरेलू वस्तुएं रखी रहती थीं। अनाजों से भरे कनस्टर, ट्रंक, पुराने जूते, आलू-प्याज का टोकरा, चलनी वगैरह। शर्मा का कमरा बन्द रहता, अनुपस्थिति में चाबी बुआ के ज़िम्मे होती।

पिछली रात टेबुल लैम्प ऊपर देर तक जलता रहा था।

आज सवेरे ही बुआ ने भुवनेसरी से कहा, "दादा दो-एक रोज़ के लिए बाहर जा रहे हैं, तू भी जाएगी साथ।"

जिज्ञासा-भरी दृष्टि से भुवन बुआ की ओर देखती रही, हाथ पापड़ों को एक-दूसरे से अलग कर रहे थे। बुआ बोली, "हां, गाड़ी एक बजे जाती है।"

भुवन का माथा ठनका, 'मुझे आज बेचने तो नहीं जा रहे हैं? मनोरमा को भी इसी तरह कहीं छोड आए थे···अच्छा जजमान कोई फंसा होगा···कितने मे बेचेंगे मुझे? तीन हजार मे? पच्चीस सौ मे? पन्द्रह सौ मे?···इसीलिए शाम को कल दो नफीस साड़ियां आई है! चमकीले ब्लाउज···नकली हीरे के टाप्स···नेल पालिश···लिपस्टिक ···स्नो और पाउडर···सिर चकराने लगा भुवन का।

खाना तैयार हो चुका था। बुआ पहले खा लेगी, चाचा पीछे बैठेंगे खाने। भुवन पापड सेंकने लगी तो पहला पापड़ जल गया। लगा कि किसीने चिमटे से पकड़कर उसे ही भट्ठी के अन्दर लटका दिया है और वह जल रही है···चट् चट् चट्···जलते हुए कच्चे मास की तीखी गंध··· हुं···आतंक की कल्पित अनुभूति तीव्रता के छोर पर आ गई तो दूसरा पापड़ भी चिमटे से छूटकर दहकती सिगड़ी के अन्दर जा पड़ा।

जलते पापड़ की सोंधी-तीखी गंध बुआ तक पहुंची, नथुने फड़क उठे। चीख पड़ी "क्या हो रहा है भुवन, पापडो से ही हवन कर रही हो?

किससे सीखा है यह मंत्र ?"

भुवनेसरी कुछ नहीं बोली, सभल ज़रूर गई। फिर दो-तीन पापड सेंके।

बुआ के सामने थाली रखकर बोली, "कम्पाउण्डर की बीवी के पास अपनी दो किताबें, स्वेटर की एक बांह और क्रोशिये पड़े हैं, ले आऊ जाकर।"

सिर हिलाकर बुआ ने मना किया। कौर निगलकर कहा, "लौट ही तो आएगी कल…जाके वापस आना है, बस !"

लड़की को बुआ की इस बात से ज़रा-सी तसल्ली हुई और माथा हल्का हुआ।

माथा तो हल्का हुआ लेकिन मन का खटका लगा रहा, नहाने गई तो देर तक धार बबे से गिरती रही और भरी बाल्टी का पानी उमड़-उमड़कर नीचे फैलता रहा।

भुवन जाने कब तक बाथरूम में बैठी रह जाती अगर नेपालिन आकर टूटी किवाड न खटखटाती…नहाने का घर क्या था माचिस की डिबिया थी। एक किवाड़ नदारद, दूसरा किवाड़ टूटा हुआ …अन्दर चौखटे की दोनों ओर किसी पुण्यात्मा ने कीलें ठोंक दी थीं, उन्हीं कीलों मे चादर उलझाकर पर्दा कर लिया था भुवनेसरी ने। गर्दन लम्बी करके मात्र सिर बाहर निकाला, बोली, "बस दो मिनट और !"

नेपालिन वापस गई।

कपड़े बदलकर चौखटे की कीलो से पर्दा वाली चादर उतारने ही वाली थी, कि कम्पाउण्डर की बीवी ने झाका। उसके हाथ काले थे। पलकें झपककर मुसकराई, कहा, "हाथ ही धोने हैं, तुम इत्मीनान से नहाओ !"

"आओ। आओ ! …" भुवन ने फुसफुसाकर लेकिन बेचैन मुद्रा मे कहा, "बस आज तो तुम्हारी इन्दिरा का…"

आगे शब्द नहीं थे लेकिन गला कटने का संकेत साफ था…दाहिनी

हथेली को गर्दन से भिड़ाकर रेतने का इशारा !

कम्पाउण्डर की बीवी अनहोनेपन की दहशत के मारे दो कदम पीछे हट गई। समझ मे नही आया कि आखिर हुआ क्या ! भुवन ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और अन्दर बाथरूम में खींच लिया। कान में बोली, "अभी मुझे वह बाहर ले जा रहा है। शायद कोई खरीदार मिल गया है···"

"हाय !" कम्पाउण्डर की बीवी के मुंह से निकला, "पहले क्यो नहीं बतलाया इन्दिरा, अब इस वक्त मैं क्या करू ?"

"मैं कल लौट आऊगी दीदी !"

"सच इंदो ?"

"चुड़ैल कह तो रही थी।"

"मगर तूने पहले क्यो नही बतलाया ?"

"मुझे खुद भी मालूम नही था···लेकिन हाथ तो धो लिए होते !"

निर्मला ने हाथ आगे बढा दिए। इन्दिरा मग से पानी डालती रही। नीरू की आंखो मे एकाएक चमक आ गई। तेज निगाहो से उसने इन्दिरा की आखों मे देखा। उन आखों मे बुझती आशा का अथाह सूनापन लहरा रहा था, भविष्य की अनिश्चितता का कुहासा।

भुवनेसरी की कलाई पकड़कर कम्पाउण्डर की बीवी ने दृढतापूर्वक कहा,"अब तुझे कोई बेच नही सकता, न खरीद ही सकता है कोई। तुझपर तो अब मेरा ही हक है। मैंने तुझे अपना दिल देकर खरीद लिया है। देखूं, कौन मेरी बहन का गला काटता है !···"

"लेकिन···" कलाई छुड़ाते हुए भुवन कुछ कहने लगी तो कम्पाउण्डर की बीवी ने बाया हाथ उसके मुंह पर रख दिया और झल्लाकर कान मे कहा, "लेकिन-फेकिन नही सुनूगी इस वक्त ! निकल यहां से, चल मेरे साथ।···"

भुवन का हाथ पकड़कर वह उसे रहने के अपने हिस्से में ले आई। अन्दर सोने के कमरे मे डाल दिया। बोली, "घबड़ाना नही इन्दो, आज

से तेरी नई जिन्दगी शुरू हुई'''उन शैतानों से मैं निबट लूंगी, तू रत्ती-भर फ़िक्र न कर'''" पीठ पर हाथ फेरकर कम्पाउण्डर की बीवी ने भुवन को चूम लिया।

और भुवन रो रही थी, शब्दों का मानो उसके लिए कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया था। उसका क्या होने वाला है? कौन-सा तूफान आने वाला है आगे? एक कम पढ़ी-लिखी औरत, जो खुद ही किसी अधेड़ मर्द की दूसरी बीवी है, उसके लिए भला क्या कर सकेगी? शर्मा क्या भुवन को यों ही छोड़ देगा'''? एकसाथ ही बीसों सवाल भुवन के दिमाग को भूनने लगे और वह रो रही थी।

कम्पाउण्डर के कब्जे में दो कमरे थे, बरामदा था, छोटा-सा आंगन था। सोने वाला कमरा मकान-मालिक के उस हाल से लगा हुआ था, जिसमें वह अनाज और सिमेण्ट की बोरियां रखा करता था। टूटे फर्नीचर भी उसमें पड़े थे। गर्मियों में तरावट रहती थी, बैसाख-जेठ की झुलसती दुपहरिया मुन्शी के परिवार को नीचे खींच लाती थी। अन्दर ही अन्दर ऊपर का रास्ता था।

कम्पाउण्डर की बीवी अपना दरवाजा तो बन्द कर ही आई थी, अब कमरे की भीतर वाली खिड़की से कूदकर उस तरफ हाल में चली गई। सीढ़ियों से ऊपर पहुंचकर मनबोधलाल की पतोहू से सारी स्थिति संक्षेप में बतलाई तो उसने कहा, "मुझे क्या पता था कि कसाई आ गया है इस मकान में? यह तुमने अच्छा किया कि भुवनेसरी को उसके चंगुल से निकाल लाई'''लेकिन, अम्मां और बाबूजी इस झमेले में नहीं पड़ना चाहेंगे! अपने घरवाले से पूछ लिया था?"

"नहीं, किसीसे नहीं पूछा था," कम्पाउण्डर की बीवी बोली, "पूछने-पाछने का मौका ही कहां था? और इस वक्त भी ज्यादा सोचने का मौका नहीं है चुन्नू की मां!"

चुन्नू की मां धूप में बैठी थी, गोद में दो महीने का बच्चा दूध पी रहा था'''फड़कते गाल और अधमुंदी आंखें'''खुराक की मिठास और धूप की

गर्माहट···बस, वह सोने ही वाला था।

कम्पाउण्डर की बीवी बच्चे पर झुक गई। प्यार-भरी नजरों से क्षण-भर देखती रही शिशु की ओर···

मनबोधलाल की पतोहू ने जाने का इशारा करके उसके कन्धे पर हाथ रखा, कहने लगी, "चलो, इसे सुलाकर आती हूं। तुम इतने में भुवनेसरी को इधर हॉल के अन्दर ले आओ, फौरन वापस जाकर खिड़की में अपनी तरफ से ताला लगा देना···सर्दी के इन दिनों में हमारे यहा का कोई भी हाल के अन्दर नही झांकता है···अम्मा और बाबूजी प्रयाग से दस रोज़ बाद लौटेंगे। इनको तो खैर मैं मालूम होने ही न दूगी···लेकिन तुम लड़की को रखोगी कहां ?"

"अब यह सब फिर सोच लिया जाएगा," कम्पाउण्डर की बीवी ने सीढ़ियों से उतरते-उतरते कहा और अदृश्य हो गई अगले ही क्षण।

खिड़की मे ताला लगाकर वह खाने बैठी ही थी कि दरवाज़ा खट-खटाया किसीने। उठ गई, बायें हाथ से उसने साकल खोली। सामने नेपालिन थी।

भुवनेसरी के बारे मे पूछे जाने पर कम्पाउण्डर की बीवी ने बतलाया, "मैंने सुबह से ही उसे नही देखा है, बाथरूम मे होगी···"

नेपालिन के चेहरे पर परेशानी थी, उदास स्वर मे बोली, "बाथरूम मे तो मैंने ही देखा था। पछीटे हुए कपड़े, बाल्टी, मग, साबुन···सारा कुछ बाथरूम मे पडा है! आप भी आके देखिए न ?"

कम्पाउण्डर की बीवी नेपालिन के पीछे-पीछे बाथरूम तक आ गई। विस्मय की मुद्रा मे मुह बनाया और पाखाने की ओर हाथ उठाकर कहा, "उधर देख आई हो ?"

"उधर ? हां, उधर भी देखा है।"

"इधर ?"

"जी, इधर भी।"

कम्पाउण्डर की बीवी ने महिम और दिवाकर जी वाले निचले-उपरले

कमरों की ओर इशारा किया था। नेपालिन की परेशानी में वह भी हिस्सा बटा रही थी कि शर्मा और बुआ भी बाहर निकल आए।

बुआ कम्पाउण्डर के आगन में आ गई। बरामदा देखा, दोनों कमरे देखे।

बिना कुछ बोले ही वापस चली गई।

शर्मा दो-तीन बार नीचे-ऊपर देख आया। विभाकर स्कूल गया हुआ था। शास्त्री जी गए थे भागलपुर। मर्दों में से अकेले महिम था।

शर्मा ने तीसरी बार महिम से पूछा तो उसने कड़ी आवाज में कहा, "माथा तो नही खराब हो गया है आपका ?"

सभीको पता था कि महिम शराब पीता है। शर्मा का लेकिन इस समय सचमुच दिमाग चकरा रहा था। सामने मुसीबत जो थी, वह इकहरी नही, दुहरी थी।

उम्मी की मा और वह दूसरी पड़ोसिन बुआ को राय दे रही थीं कि शाम तक लड़की वापस नही आती है तो पुलिसवालो की मदद लीजिए। समय-साल ठीक नही है, जाने कौन उचक्का बेचारी को बहका ले जाए और कही की न रखे।

कम्पाउण्डर की बीवी नेपालिन से बार-बार बतला रही थी, "कल भुवन ने कई दफे गंगा चलने के लिए कहा था, आज सुबह भी कह रही थी। नल में नहाने से उसको सन्तोष नही होता है। शायद गंगा चली गई होगी···"

और नेपालिन का कहना था, "भला गंगा कैसे गई होगी, सब कुछ तो यहां पडा है बाथरूम मे ?"

बुआ की तो मानो जीभ ही अकड़ गई थी, एक भी शब्द निकल नही रहा था मुह से।

विभाकर ने कहा, "दीदी, आज रात वाली गाड़ी से मुझे वापस जाने दो। स्कूल मे गैरहाज़िरी बढ़ती जाएगी न ?"

"ज्यादा नही रोकूगी," इन्दिरा बोली, "कल जाओगे। आज शाम को भइया, भाभी और बच्चे नाव से राजघाट जाएंगे, वापस भी आएगे उसी नाव से। मुझे भी साथ जाना है और तुम्हे भी जाना होगा···कहते है, नाव से काशी की शोभा देखते ही बनती है और मैंने तुम्हारी तरफ से भी हा कर दी थी न !"

"कल भी तो न रोकोगी ?" विभाकर ने मुस्कराकर पूछा।

इन्दिरा ने कहा, "नही विभू, कल क्यों रोकूगी !"

विभाकर के सामने 'आज' का रविवासरीय परिशिष्ट फैला था। पाच साल की बच्ची करीब ही खेल रही थी···धुला चटकीला फ्राक, गेहुआ रग का सुन्दर मुखड़ा, चोटियो मे पीला रिबन···प्लास्टिक का बेबी था सामने, उसकी बाहों को कसरत करवाने मे मशगूल थी।

विभाकर ने उसे छेड़ा, "दीदी, यह तो कल पटना जाएगी मेरे साथ···मुगलसराय मे इसको अमरूद खिलाऊगा। क्यो री कुतल !"

कुन्तल इन्कारी मुद्रा मे माथा हिलाती रही, बेबी को अब उसने गोद मे लिटा लिया था। एक नजर विभाकर की ओर डालकर बोली, "पटना नही जाऊगी, अमरूद आप यहां भी खिला सकते है···"

"पेटू कही की !" अन्दर वाले कमरे से मां की आवाज़ आई तो बच्ची शर्मा गई और खिलौने को अलग रख दिया।

इन्दिरा ने उलाहने के स्वर मे कहा, "आप भी खूब हैं भाभी ! एक-आध अमरूद आपको भी तो आखिर मिल ही जाता ! नही मिलता ?"

"वो ढेर-से अमरूद रखे हैं," कुन्तल की मा ने खाने की मेज की ओर हाथ उठाकर कहा, "मुझे तो जुकाम हो गया है मगर तुम क्यों नही लेती हो ?"

महरी को इशारा मिला मालकिन का। अगले ही क्षण अमरूदों वाली चंगेरी इन्दिरा के आगे थी। नमक और काली मिर्च की बुकनी भी आई।

इन्दिरा ने एक बड़ा-सा अधपका अमरूद उठा लिया, चाकू से चार टुकड़े किए। नमक-मिर्च मिलाकर पहला टुकड़ा बच्ची को थमाने जा रही थी लेकिन मा की ओर देखकर उसने इन्कार कर दिया।

बेटी के स्वाभिमान पर ध्यान गया तो मां बोली, "अब लेगी भी कि नहीं? कौन-सी बात मैंने कही थी!"

कुन्तल चुपचाप बाहर खिसक गई तो भागते-भागते छोटे साहब आए और अमरूद के दो टुकड़े चट से उठा लिए!

सभी हंसने लगे। छोटे साहब के गाल अमरूद की पिसाई कर रहे थे, निगाहें लेकिन हसने वालों के चेहरे तोल रही थी। मुंह आधा खाली हुआ तो जैसे-तैसे बोले, "क्या किया है मैंने? क्यों हंस रही हैं आप लोग?"

और तीसरा टुकड़ा भी छोटे साहब ने उठा लिया, चौथा भी।

इसपर फिर हंसने लगे तीनों। मा बोली, "राजीव, लगता है तू कई दिनों का भूखा है..."

चार फांक करके दूसरा अमरूद भी इन्दिरा ने राजीव की ओर बढा दिया मगर उसने कहा, "नहीं बुआ, अब वो दीजिए चित्तियों वाला! दांतों से काटके खाऊंगा..."

"बन्दर!..." मा ने कहा। उसकी निगाहें लाड़ को सहला रही थी।

विभाकर और इन्दिरा ने तीन-चार अमरूद खाए। उधर राजीव रेडियो खोलकर मद्रास से टेस्ट मैच की कमेण्ट्री सुनता रहा। भाभी सुई और धागों मे उलझी रही, लेस तैयार होना था पेटीकोट के लिए।

विभाकर पान खाने के लिए गली के नुक्कड़ की ओर निकल गया। इन्दिरा कहानी की कोई पत्रिका ले बैठी।

सदानन्दलाल: निर्मला की अपनी मौसी का लड़का। पिता से बचपन मे ही हाथ धोने पड़े। दर्जा आठ के बाद ही कलकत्ता पहुंचकर उसने अपने को जन-समुद्र के ज्वार-भाटे मे डाल दिया...ट्यूशन और

ट्यूशन और ट्यूशन···अपना खर्चा, मां का खर्चा, पढ़ाई का खर्चा···
श्रवणकुमार ने वर्षों तक अपंग मां-बाप को ढोया था। खांचों में बैठे-बैठे देश-दर्शन तो उनके लिए सहज था ही, सेवा भी सुलभ थी···मां जब तक जिन्दा रही, सदानन्दलाल श्रवणकुमार की तरह उनकी खिदमत में जुटा रहा। कलकत्ते के लोकारण्य में यह श्रवणकुमार किसी दशरथ के शब्द-वेधी बाण का शिकार नहीं हो पाया।··

स्वस्थ-सुन्दर युवती। लड़कियों के गैर-सरकारी माध्यमिक स्कूल की अध्यापिका। रूढ़ि के बाड़े से बाहर निकलकर संघर्ष की भट्ठी में तिल-तिल करके तपनेवाले मां-बाप की संतान। बी० ए०, बी० टी० करके दो वर्ष अध्यापन। सदानन्द से परिचय···प्रोफेसर श्री सदानन्दलाल। ब्राह्मण की लड़की और कायस्थ का लड़का···दोनों में घनिष्ठता···इलाहाबाद के आर्य समाज मंदिर में शादी···

जिला बनारस की किसी तहसील में इंटरमीडियट कालेज की सर्विस स्वीकार करके भूल नहीं की थी सदानन्द ने, क्योंकि वहीं कुमारी रंजना ओझा से उसका प्रथम साक्षात्कार हुआ था···

ब्याह के आठ-दस साल गुजर गए, नये नागरिकों का छोटा-सा परिवार काशी के मुहल्ला तुलसीघाट में जम गया है। सदानन्द अब विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाते हैं, रंजना है लड़कियों के एक इंटर-मीडियट कालेज में। दो बच्चों के बाद तीसरी संतान न हो इसलिए दोनों ने संतति-निरोध के तरीके अपना लिए हैं। राजीव और कुन्तल की शिक्षा कन्वेण्ट में हो रही है।···

बरामदे में दोपहर की गुलाबी धूप फैली थी।

बीचोबीच बड़े तख्त पर गद्दा और चादर। रंजना को आलस्य आ गया, तकिया खींचकर लेट गई।

राजीव रेडियो बन्द करके वहीं बैठक से कैरम बोर्ड उठा ले गया और विभाकर के साथ खेलने लगा।

सुई-धागे और जाली परे हटाकर रजना ने अच्छी तरह पैर फैला लिए। मुदी आंखों की पलकों से ऊपर पपोटों की बारीक रगों में सूक्ष्म स्पन्दन गौर करने लायक था।

इन्दिरा अन्दर से शाल ले आई, पैरों की तरफ से भाभी को कमर तक उढा दिया। दुबारा फिर कहानी की पत्रिका लेकर नही बैठी, विभाकर और राजीव का कैरम-मैच देखने चली गई।

रजना सो रही थी—

स्वप्न की इन्द्रधनुषी दुनिया···

बडी-बडी आखो वाली एक हिरन बेतहाशा भागी जा रही है··· छोटी-छोटी झाडियो वाली तलहटी का ऊबड-खावड़ इलाका। कही-कही टेकरियो पर पुराने किले नज़र आ रहे हैं। टेढी-मेढ़ी नदी दूर से ही चमक रही है। लगता है कुबेर के खज़ाने की चादी बंदी यक्षों की जलन से अन्दर ही अन्दर पिघलकर वह निकली···प्यासे जानवर अलग से ही गर्दन लम्बी करके चादी की नदी के प्रवाह पर प्यास बुझाने के लिए झुक पड़े है। दो घूट पीकर ही ऊपर आकर कगार पर खड़े होते हैं और मनुष्य की आवाज़ में ललकारने लगते हैं भागते हिरन को! जो भी जानवर चादी की उस धार मे मुंह लगाता है वह आदमी की बोली में भागते हिरन को आवाज देने लग जाता है···

वह बार-बार कटीली झाडियों में उलझती है, खड्डो मे लुढकती है बार-बार। पैतरे बदलकर आगे-पीछे से और अगल-बगल से वे जानवर उस बेचारी को बार-बार घेरते है, हमला करते है, जमीन पर गिरा देते है···लो, गए गरीब के प्राण! मार डाला! अब वे उसे नोच-नोचकर खा जाएगे···

मगर नही, वह तो भागती-भागती चांदी की धार के पास पहुंच गई···तो वह भी गर्दन लम्बी करके अपनी प्यास बुझाएगी और आदमी की बोली मे हमलावरों को ललकारेगी? नहीं, नही, वह इस तरह अपनी प्यास नही बुझाएगी। देखो न, किनारे-किनारे भागी चली जा रही है··· तीर लग गया पुट्ठे मे, खून की लकीरें नजर आ रही है लेकिन भागने की

रफ्तार तो और बढ़ गई।

"अरे! यह तो अपने हाते के अन्दर आ पहुंची! अब मैं क्या करूं?"

"करोगी क्या। पाल लो इसे, कैसा खूबसूरत हिरन है, वाह!··· बदन मे दस-पाच घाव हैं, भर जाएगे। तबीयत बहलाने के लिए ऐसा सजीव और वफादार खिलौना और कहा मिलेगा?"

"चुच्···चुच्···चुच्···चू! आ मेरे पास तो आ!···"

"प्यासा है? पानी पिएगा न! खाएगा नही कुछ?···अरे राजीव, गोभी के पत्ते पड़े हैं ढेर-से किचन के बाहर···ले आना बेटी! अपना हिरन बडा भूखा है···"

क्या खूब। यह तो अच्छा जादू रहा!

आखें-भर उस हिरन की रह गई हैं, मुखड़ा तो इन्दिरा का है यह! शक्ल-सूरत, चाल-ढाल, सब कुछ इन्दिरा का···

दीवाल पर से आगन मे बिल्ली कूदी—धम्!

रंजना के स्वप्न में विराम पड़ा। आखें तो बन्द ही किए रही, लेकिन करवट बदलकर पीठ को आगन की ओर कर लिया। कुन्तल आकर साथ लेट गई और नाक को नाक से भिड़ा दिया।

निद्रित स्वर में रंजना बोली, "चुपचाप लेट, परेशान मत कर!"

कुन्तल बित्ता-भर अलग हो गई, उंगलियों में उंगलिया उलझाकर अपने-आप खेलने लगी।

सपनों की कड़ी टूट गई थी, रंजना को अखर रहा था।

लाख कोशिश की, सपनों का तार फिर नही जुड़ सका। थोड़ी देर तक लेटी रही और इन्दिरा के बारे मे काफी कुछ सोचा। तय किया कि इस लड़की को प्राइवेट तौर पर पढ़ाएगी, अगले वर्ष प्रवेशिका (एडमिशन) का इम्तहान दिला देगी।

निर्मला ने विभाकर को सदानंद का पूरा पता दिया था, चिट्ठी दी थी। स्टेशन से तुलसीघाट तक पहुंचने में जरा भी दिक्कत नही हुई,

सुबह का वक्त था। पत्र देखकर सदानंद ने इन्दिरा की पीठ पर हाथ रखा, बोले थे, 'पिछली बातों को बिलकुल भूल जाना ! सोचो कि फिर से जन्म हुआ है···यहां आराम से रहो। पढो और लिखो, बच्चों के साथ खेलो ! बहुत सारी सहेलियां मिल जाएगी यहां तुम्हें'···और तभी से भाई साहब ने इन्दिरा को ममता के दायरे में समेट लिया।

और भाभी ? भाभी ने तो संजीदगी और स्नेह का अनूठा परिचय दिया था पिछले कई दिनों के अन्दर। रंजना ने इन्दिरा को इस तरह अपना लिया जिस तरह गंगा यमुना को अपनाती है। पिछले जीवन के बारे में एक भी सवाल नहीं पूछा था उसने···खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने की रुचि के सिलसिले में लेकिन कई बातें पूछ ली थीं।

निर्मला ने पत्र में जो कुछ लिखवाया था, काफी था। रंजना ने वह चिट्ठी ड्रेसिंग टेबुल की दराज में रख ली थी। इन्दिरा अपने बारे में नीरू का वह पत्र इन तीन दिनों के अन्दर पांच-सात बार पढ़ चुकी थी और अब भी बार-बार पढ़ना चाहती थी।

भुवन मर चुकी थी, इन्दिरा का जन्म चिता-भस्मावली की उसी वेदी पर हुआ था···इन्दिरा के लिए जीवन की पिछली बातें 'आख्यान'-भर थीं। दस रोज़ पहले वह क्या थी, इसका ध्यान आते ही लड़की को रोमांच हो आता था।

तो फिर उस चिट्ठी को बार-बार इन्दिरा क्यों पढ़ती थी ?

अपने मनोबल को परखने के लिए पढ़ती थी।

मुसीबतों ने उसकी आत्मा को इस तरह कुचल दिया था कि अपनी सहज सूझ-बूझ को भी वह धोखे की टट्टी मानने लगी थी। अपने बारे में सोचना उसकी राय में सबसे ज्यादा खतरनाक काम था। निर्मला ने हिम्मत न की होती तो इन्दिरा का उस नरक से निकलना असंभव ही था।

बाल्टी में बच्चों के स्वेटर भीग रहे थे। रंजना बाथरूम जाते-जाते बोली, "तीन बजने वाले हैं, स्वेटर खींच लूं। इतने में तुम कुंतल के कपड़े बदलवा दो। चार बजे चाय का पानी चढ़ा देंगे। पांच बजे निकलना है,

सदानन्द दशाश्वमेध आ जाएंगे ।"

इन्दिरा कंतरा को खोज लाई बाहर से।

ड्रेसिंग टेबुल के करीब खड़ी हुई तो कुन्तल को जैसे कुछ याद आ गया। आखें फैलाकर बोली, "फिर वक्त नही मिलेगा बुआ, सुबह स्कूल के लिए कापियां और किताबें सहेज लू !"

"जल्दी आओ लेकिन।" इन्दिरा ने कहा।

बच्ची दूसरे कमरे की तरफ चली गई तो इन्दिरा ने दराज खींचकर पत्र निकाल लिया···स्टूल पर बैठकर पढने लगी :

"भइया के चरणों मे निर्मला का प्रणाम।

"एक अनाथ लड़की आपकी शरण मे जा रही है। मुझे पूरा भरोसा है कि आप और भाभी इस लड़की को अपने परिवार में शामिल कर लेंगे।

"भइया, आपने बहुतो का उद्धार किया है। आपका हृदय विशाल है···मै बचपन से ही आपके स्वभाव को जानती हूं। किसी कारण अगर अपने परिवार मे इस समय इस लडकी को जगह न दे सकें तो कोई दूसरी व्यवस्था करेंगे।

"इन्दिरा नाम है, उम्र है उन्नीस की। ज़िला मुंगेर की किसी मशहूर वस्ती मे पैदा हुई थी, घराना ऊंची नाक वालो का। पन्द्रह की उम्र में शादी हुई। दूल्हा पाइलट था, उसी वर्ष हवाई दुर्घटना मे जान गंवा दी। इन्दिरा का फिर वही हाल हुआ, घुटी हुई तबीयत के युवको और आदर्श-हीन अधेड़ो के बीच एक विधवा तरुणी का जो हाल होता है।

"गर्भ चार महीने का हुआ। एक अत्याचारी रिश्तेदार डाक्टरी इलाज के बहाने इन्दिरा को आसनसोल ले गया और धर्मशाला में अकेली छोड़-कर खिसक आया। तब से दो वर्ष इन्दिरा के कैसे कटे हैं, यह बात धरती जानती होगी कि आसमान जानता होगा···हम-आप तो अन्दाज भी नहीं लगा सकते भइया !

"लड़कियों और औरतों की खरीद-बिक्री जिनका धन्धा था, ऐसे ही एक राक्षस के चंगुल से आपकी छोटी बहन इन्दिरा को छुड़ा लाई है—

झपट्टा मारकर चील की तरह छीन लाई है···

" आप मेरी पीठ ठोकेंगे और भाभी मुझे इनाम देंगी।

" छोटे भइया की शादी के मौके पर आप दोनों गया जरूर आएंगे।

" भाभी जी को प्रणाम···चिरन्जीव राजीव और कुतल को प्यार···

नीरू, आपकी छोटी वहन।"

जिसके हाथ की लिखावट थी वह विभाकर बाहर वाले कमरे मे कैरम खेल रहा था।

इन्दिरा को लगा कि इस पत्र को फाडकर चूल्हे के हवाले कर देना था। वह अपने अन्दर अव नई चेतना महसूस कर रही थी। जीवन के इस नये प्रवाह का स्वाद कैसा अनूठा था। ··दोनों हाथ जोडकर उसने भइया और भाभी के फोटो को प्रणाम किया···जिसका फोटो बाहर नही था, वल्कि अपने दिल की दीवार मे टंगा था, उस निर्मला को तो इन्दिरा ने कई गुनी अधिक श्रद्धा से प्रणाम किया।

नृत्य की भगिमा मे उछलती हुई कुन्तल आई, सामने खडी हो गई!

१०

शर्मा और दास जी के सामने आमलेट की एक-एक प्लेट थी, बुआ के आलूचाप था।

सोनपुर रेलवे स्टेशन का रिफ्रेशमेण्ट रूम।

वाहर लखनऊ और पहलेजा घाट जाने वाली ट्रेनें खडी थी। प्लेटफार्म पर दोनों ओर काफी चहल-पहल थी। अन्दर चाय और नाश्ता के लिए पाच-सात टेबुलों पर मुसाफिर जमे थे। भीड नही थी। बैरे इत्मीनान से उन्हें सर्व कर रहे थे।

काले रंग का ओवरकोट, पश्मीने का कश्मीरी मफलर स्लेटी रंग का।···शर्मा ने निचली पाकिट से गोल्ड फ्लैक का पैकेट निकाला और

बैरे को माचिस के लिए संकेत किया।

एक सिगरेट दास को थमाता हुआ बोला, "इस लड़की ने तो मुझे ऐसा छकाया कि···"

"बड़े खानदान की थी न ! ···" बुआ ने आहिस्ता से कहा। टमाटर की मीठी चटनी उंगली से चाटती रही और शर्मा की ओर देखती भी रही।

सिगरेट एक तरफ रखकर तिलकधारीदास चार अण्डों के उस बड़े आमलेट में भिड़ा था। चाकू-सहित दाहिना हाथ उठाकर बोला, "कई रोज हो गए न ? कहां गई होगी भला ?"

बैरे ने आकर सिगरेट सुलगा दी···धुएं के छल्ले ऊपर उठकर धीर-ललित भंगिमा में मंडराने लगे तो बुआ ने गर्दन ऊंची की, देख लिया उन्हें। बुआ को पहाड़ी शरद के कुन्तल मेघ याद आ गए।

शर्मा ने जलती सिगरेट को राखदानी के कंधे पर रख दिया। बोतल का लेबुल देखकर जरा-सा सिरका उंड़ेल लिया प्लेट में···बुआ ने हाथ बढाकर शीशियों से नमक और काली मिर्च की बुकनी छिड़क दी आमलेट पर···चाकू और कांटे में हरकत आई।

कुछ देर तक वे नहीं बोले।

शर्मा ने आमलेट खत्म किया। पानी पीकर सिगरेट की ओर दृष्टि डाली और वह राख हो चुकी थी।

दास ने अपनी माचिस निकाली। सिगरेट का धुआं फिर ऊपर उठा।

बुआ ने पूछा, "ट्रेन छूट नहीं जाएगी ?"

"छूटने दो !" शर्मा बोला। दास ने घड़ी देखकर कहा, "बीस मिनट बाकी हैं···वो चाय आ रही है। इस स्टीमर को छोड़ देंगे तो दूसरा स्टीमर छै बजे से पहले नहीं मिलेगा। लेकिन आप तो शर्मा जी मुजफ्फरपुर जा रहे है न ?"

"हां," शर्मा ने कहा, "आप इनको धर्मशाला पहुंचा दीजिएगा !"

"जरूर पहुंचा दूंगा। और, आप वापस कब आ रहे है ?"

"कल शाम तक । देर हुई तो परसों जरूर पहुंच जाऊंगा।"

"हां, मकान के लिए कहा था न ? 'पत्थर की मस्जिद' से आगे मिले तो लीजिएगा ?"

"दूर पड़ जाता है।"

"आपके लिए तो फिर भी ठीक ही रहेगा।"

"लेकिन बांकीपुर में भी खोजना चाहिए।"

"बेशक !"

बुआ बोली, "पटना बड़ा ही रद्दी शहर है दास जी, झूठ कहती हूं ?"

"झूठ ! बिलकुल झूठ !" तिलकधारीदास ने कहा और बूढ़ी उंगली के नाखून से ठनकारकर चांदी का रुपया बजाने की मुद्रा दिखलाते हुए बात पूरी की, "इधर देखिए देवी जी, यही एक ऐसी चीज़ है जिसकी बदौलत रद्दी से रद्दी जगह शानदार हो उठती है ! इसके बिना स्वर्ग नरक बन जाता है। आपको लगता होगा पटना रद्दी शहर, मेरे खातिर तो वह इन्द्रपुरी है…"

शर्मा आंखें फैला-फैलाकर तिलकधारीदास की बातों का अनुमोदन कर रहा था। पटना की कृपा से उसके दर्जनों रिश्तेदार मालामाल हो गए थे। जान-पहचान के पचासों युवक सेक्रेटेरियट में सरकारी फाइलों पर पद्मासन लगाए बैठे थे। इन दस-बारह वर्षों में क्या से क्या हो गया था। हुकूमत की बागडोर अपने आदमियों के हाथों में आ गई थी। छोटा भाई सन बयालिस में चार-छै महीने के लिए जेल हो आया था, कांग्रेस की मेहरबानी हुई और अब वह नई दिल्ली पहुंच गया था। ज़िला के हाकिम सलाम ठोंकते थे।…सूझ-बूझ होनी चाहिए तुम्हारे अन्दर, ज़रा-सी हिम्मत से काम लो और फिर देखो कि कहां से कहां पहुंच जाते हो ?…दास की बातें अच्छी लगीं शर्मा को।

चाय पीते-पीते शर्मा ने बुआ से कहा, "मैं मानता हूं, पटना में गंदगी बहुत है, कार्पोरेशन लंगड़ा है। रहने लायक मकानों की कमी अखरती है। मनबोधलाल अकेला नहीं है, सैकड़ों मनबोधलाल हैं और कार्पोरेशन की

छत्रछाया में किरायेदारों का सत निचोड़ते जाना ही उनका खास पेशा है···"

"लेकिन यही सब कुछ नहीं है," चाय खत्म करके तिलकधारीदास ने शर्मा की बात मुंह से छीन ली, "बोरिंग रोड और कदमकुआं जैसी साफ-सुथरी बस्तियां भी इस शहर के अन्दर है। निकट भविष्य में ही नगर का कायापलट हो जाएगा। आज के सड़े-पुराने मकानात साफ-सुथरे और आरामदेह काटेजों में तबदील हो जाएंगे।"

शर्मा ने बिल चुकाया, बैरे को पचीस पैसे 'टिप' में दिए।

तीनों बाहर प्लेटफार्म पर आ गए।

बुआ को लगा कि नाहक उसने पटना को रद्दी शहर कह दिया, दास जी बुरा मान गए।

पहलेजा जानेवाली ट्रेन में इंजन लग चुका था। सेकेंड क्लास के कम्पार्टमेंट में बुआ को बैठाकर दोनों पान की दूकान के सामने आ गए।

आईना काफी साफ और बड़ा था। उड़ती निगाहों से चेहरा देखा। शर्मा का दिमाग परेशानी का शिकार था, होंठों पर मुस्कान कहां से उभरती? दास जी ने भी अपनी संजीदगी बरकरार रखी।

शर्मा ने दास की ओर घूमकर कहा, "मुझे तो भई कम्पाउण्डर की बीवी पर शक है!"

"धत्···!" दास बोला और आईने में शर्मा का चेहरा देखता रहा।

पानवाले ने चार बीड़े थमाए।···जर्दा और सुपारी के टुकड़े।

चूना के लिए हाथ बढ़ाकर शर्मा ने आंखें नचाईं, "आपको किसपर शक है?"

"छोकरी खुद ही क्या कम चालाक थी?" दास जी ने कहा।

चूना चाटकर क्षण-भर बाद बोला, "जादूगर की डिबिया कहीं से हाथ लग गई हो और बाथरूम से उठाकर भुवन को उसीमें रख लिया हो···"

"आप तो मखौल उड़ाने लगे मेरी बात का!"

"नहीं शर्मा जी, आपके इस शक की कुछ बुनियाद भी तो हो आखिर?"

"हमारी बहन का भी उसी औरत पर शक है।"

"मगर वो बेचारी भुवन को गायब करके क्या पा गई? ···मान लीजिए कि कम्पाउण्डर की बीवी ने उस लड़की को कहीं छिपा दिया··· किसी अदृश्य सुरंग के रास्ते, बाहर सुरक्षित स्थान में कहीं रख आई होगी···समझ में आ नहीं रही है बात शर्मा जी!"

शर्मा ने दास जी के कन्धे पर हाथ रखके कहा, "शक तो फिर शक हुआ! मैं यह कहा कह रहा हूं कि उसीने भुवन को गायब कर दिया। मकान-मालिक का भीतरी गोदाम कम्पाउण्डर के कमरे से मिला हुआ है, बीचोंबीच दीवाल है। दीवाल में खिड़की है। दोनों तरफ से ताला लगा रहता है। इस तरह हमारा उसपर संदेह करना ठीक नहीं जंचेगा। लेकिन कम्पाउण्डर की बीवी को छोड़कर उस मकान के अन्दर और कौन थी जिससे भुवन का इतना अधिक प्यार था? राय न भी ली हो, बतलाकर जरूर गई होगी···"

तिलकधारीदास ने सिर हिलाकर कहा, "हां, यह बात समझ में आती है।"

इंजन ने सीटी दी। शर्मा ने कहा, "अब आप ट्रेन में बैठ ही जाइए।··· चंपा बेहद घबड़ा गई है, आप कल उसे अपने परिवार में ले जाइए। दिन-भर उन लोगों के साथ रहेगी, बच्चों से मन बहलेगा। औरतें चाहे कैसी भी परेशान हों, परिवार का वातावरण उनके लिए टानिक साबित होता है।"

तिलकधारीदास ट्रेन के अन्दर दाखिल हुए कि इंजन हरकत में आया।

ट्रेन सरकने लगी। शर्मा ने बुआ से कहा, "चंपा, कल तुम दास जी के बासे पर हो आना!"

चम्पावती सिर हिला रही थी, कम्पार्टमेण्ट आगे सरक गया।

पन्द्रह मिनट बाद ही सबलपुर का दियारा था सामने। बलुग्राही मदान ककड़ी-खरबूजा और परवल की बेलों से चितकबरा लग रहा था। माघ की पूर्णिमा गुजर चुकी थी। हवा में खुनकी थी तो धूप मे तीखापन आ रहा था। सूर्य की किरणों में गंगा की धार चमक रही थी, उस पार बाकीपुर के बिल्डिंग जगमगा रहे थे।

स्टीमर मे भीड़ नही थी और वक्त पर खुला था।

दास जी ने कैण्टीनवालो को मक्खन-रोटी और चाय के लिए आर्डर दे रखा था। सेकेण्ड क्लास वाले गोल केबिन में दोनों आराम से बैठे थे।

चम्पा ने मुस्कराकर कहा, "आपको बन्द केबिन में यों बैठना अच्छा लगता है, मुझे तो यह अच्छा नहीं लग रहा है···!"

"अच्छा तो मुझे भी नही लगता है," तिलकधारीदास ने अखबार के कालमों से नजर बिना उठाए ही कहा, "मगर यहां बैठने का आराम था न! ···चाय पीकर बाहर डेक पर खड़े होंगे।"

चम्पा ने खिडकी से उचककर देखा: बालू वाले किनारे तेजी से पीछे खिसक रहे है।···नीली जलराशि के मोटे हिलकोरे झूलों की तरह स्टीमर को झुला रहे है और अब किनारा छोड़कर जहाज़ पटना की ओर होने लगा···इस पार से उस पार क्या सामने-सामने जा लगेगा?···पानी में कही-कही खूटा गडा है, रहनुमाई के लिए! ···दाहिनी ओर बीच में ही छोटा-सा दियारा निकल आया है, ढाई-तीन बीघे की पट्टी होगी नाव की शकल की। फूस की दो छोटी झोपड़िया दिखाई पड़ी···लंगोटी सूख रही है, संत-महात्मा ने आसन जमा रखा होगा।

चम्पा की इच्छा हुई कि वह भी इसी दियारे पर रह जाती···शर्मा जी को यह अच्छा लगेगा? नहीं अच्छा लगेगा। मैं खुद ही चार रोज से ज्यादा रह लूगी इन झोपड़ियो मे? सैर-सपाटे के लिए दो-एक दिन बीहड़-वीरान मे भटक लेना और बात है···स्वर्ग में भी मुझे अकेले रहना पड़े तो थाइसिस हो जाएगी···भरे-पूरे परिवार मे पैदा हुई थी न? आलू का भर्ता और भात पर ही बचपन नही गुजारा था मैंने···मीठा-तीता, तीखा-

चरपरा, खट्टा-सोंधा वह कौन-सा रस है भला, जिससे जीभ अघा न चुकी हो ?···पहनने के लिए बित्ते-भर चौड़ी दो लंगोटियां, ढाई-ढाई गज़ के दो टुकड़े ! और क्या होगा झोंपड़ी वाले के पास ? अपन तो ट्रंकों में तीस-चालीस साड़ियां होंगी···

शान्ति-निकेतनी स्टाइल की किनारियोंवाली चम्पई रंग की रेशमी साड़ी और उसीसे मैच करती ब्लाउज़ पहने एक बंगाली लड़की डेक पर रेलिंग से लगी खड़ी थी। उधर नज़र उलझी तो चम्पा को अपनी जवानी के दिन याद आ गए।

कैण्टीन का बैरा ट्रे रख गया था।

दास जी ने मक्खन लगाकर पहली स्लाइस चम्पा को थमा दी, दूसरी को भी उसीके लिए रख दिया। बाकी दो अपने मुंह में।

चाय बनाई चम्पावती ने।

पापड़ वाला दिखाई दे गया, दो पापड़ लिये गए।

चम्पा बोली, "महेंद्र घाट और पहलेजा घाट के दर्म्यान जहाज़ की आधा घंटा वाली ट्रिप मुझे बड़ी अच्छी लगती है। मैं तो महीने मे एक-आध बार यों भी आ जाती हूं।"

"फिजूल भटकना पागलपन है देवी जी !" दास ने कहा।

चम्पा चुप रह गई।

अगले ही क्षण केबिन से बाहर आकर वह डेक की रेलिंग के सहारे खड़ी थी। लेकिन गंगा की मुख्य धारा अब पीछे छूट गई। महेन्द्र घाट करीब आ रहा था।

पीछे-पीछे तिलकधारीदास भी डेक पर आया।

उतरने के लिए मुसाफिरों में सुगबुगाहट आई। देहाती लोग गट्ठर सिर और कंधों पर लादे अभी से खड़े हो गए।

दास जी ने चम्पा से पूछा, "चलिए न आज ही हमारे डेरे पर ! धर्मशाला मे अकेले क्या कीजिएगा ?"

"नेपालिन इन्तज़ार कर रही होगी, आज तो मुझे धर्मशाला ही

पहुंचा दीजिए। कल जरूर आ जाऊंगी···" चम्पा को मनबोधलाल वाला मकान याद आ गया···कैसे-कैसे अजीब लोग उस कबाड़खाने में रहते हैं? अच्छा हुआ, छुटकारा मिला।

जेटी से जहाज आ लगा। दोनों बाहर निकल आए।

११

आधा सेर हरे चने लिये थे, चूसने के लिए लाल गन्ना लिया था। गोभी, आलू, धनिया के पत्ते, हरी मिर्च, अदरक, आवले···सब्जीवाला थैला भर चुका था। कम्पाउण्डर की बीवी की नजरें अब बेर खोज रही थीं।

उम्मी की मा ने बैंगन-मूली, आलू-गोभी, सेम और धनिया के पत्ते लिये थे।

अब दोनों यों ही मुसल्लहपुर हाट के चक्कर लगा रही थीं।

उस भारी भीड़ में बदन से बदन छिलता था। सुबह पांच बजे से दिन के नौ बजे तक रोज़-रोज़ का यह नज़ारा था। पांतों के दर्म्यान ज्यादा से ज्यादा जगह छेक लेने की होड़ के लिए दूकानदारों के लाभ-लोभ जिम्मेदार न थे। नागरिक सहयोगिता के युग-सुलभ सस्कार का अभाव ही इसके लिए ज़िम्मेदार था।

किसीके बूट से पैर की उंगलियां दब गईं तो कम्पाउण्डर की बीवी ने चट से उसकी मफलर पकड़ ली, डांटकर कहा, "अंधे तो नहीं हो!"

"क्या हुआ?···क्या हुआ?···"कई तरफ से आवाजें उठीं।

कम्पाउण्डर की बीवी मफलर का पल्ला छोड़कर बोली, "जाओ, तुमने मेरा पैर कचर दिया!···नाल ठुंकवाकर भीड़ के अन्दर क्या चरने आए हो?"

भीड़ में से हंसी की मिश्रित आवाज उठी और वह मुच्छड़ जवान माथा झुकाकर आगे बढ़ चुका था।

कम्पाउण्डर की बीवी के कान मे उम्मी की मां ने कहा, "और अगर वह अड़ जाता ?"

"तो मैं उसे दो थप्पड़ लगाती," कम्पाउण्डर की बीवी बोली, "लेकिन वह समझदार था। शर्म के मारे चुपचाप आगे बढ़ गया। देखा ?"

उम्मी की मा आगे बढती हुई सोचती रही···'बलिहारी है जीवट की। तुम्हारे मां-बाप स्वाभिमानी, मस्त और दबग किस्म के लोग होंगे··· झिझक, तंगदिली, डर और उदासी तुमसे भागे-भागे फिरते हैं। खुशी और मस्तानापन तुम्हारे कदम-कदम पर निछावर है। मुर्दा के अन्दर जान फूक दी तुमने···भुवनेसरी लाश नही तो और क्या थी ! चुटकी बजाकर उस मैना को उड़ा दिया तुमने ! ···और एक मै हूं, रोज लात खाती हू··· कभी इन रगो मे भी ताजा लहू दौड़ता था, अब तो बस दुर्गंध और बासी पानी भर गया है इनमे—उस हुक्के का पानी जिससे कई होंठ अघा गए हों ! ···'

"किस गुन-धुन मे पडी हो !" कम्पाउण्डर की बीवी उम्मी की मा का हाथ पकड़कर आगे बढी, "और अब क्या लोगी दीदी ? क्या देख रही थीं ठिठककर ! लहसन ? चौलाई के दाने ? भिंडी और तुरई के बीज ? ···देखो, भीड़ छटने लगी न ? आज उन्हे किसी दोस्त के यहां दावत है। हरे चने की घुघनी तलूगी अपने लिए और दुपहर मे चुन्नू की मा के पास छत पर बैठकर गंडेरिया चूसूगी···दीदी, तुमको अच्छा नहीं लगता है गन्ना ?"

उम्मी की मां कमजोर थी। हाट से बाहर निकलते ही उसकी निगाहें रिक्शा के लिए चौकने लगी। कम्पाउण्डर की बीवी के लिए तो मील-दो मील का फासला कुछ भी नही था लेकिन उम्मी की मां के लिहाज से रिक्शा कर लेना जरूरी था।

घर लौट आई दोनों।

उधर महिम फट पड़ा, "हजार बार कहा कि मुझसे बिना पूछे यों निकल जाने की लत छोड़ो लेकिन कानों की लम्बाई के अन्दर बात जाए

भी तो !…"

फीकी नज़रों से उम्मी की मां ने महिम की तरफ देख लिया। दबी ज़ुबान से बोली, "ज़रा-सी देर हो गई। आप कपड़े साफ करोगे और नहाओगे, इतने में खाना पक जाएगा…"

महिम ने गुस्से में कहा, "अच्छा, यह तो बतलाइए कि बड़ी चम्मच कहां फेंक आई ? मर्तबान के अन्दर हाथ ही डालना पड़ा !"

सब्जीवाला थैला नीचे रखकर उम्मी की मा ने दीवाल वाली खुली आलमारी को उचक-उचककर देखा, आलों पर टोह ली, कहीं नहीं मिली चम्मच। उदास आवाज में बोली, "ट्रंक मे एक और है, निकाल लूंगी…"

महिम ने पैर पटककर कहा, "जहां मिले, खोज लाओ ! तुम फेंक आती हो, चोट्टे उड़ा ले जाते है…आइन्दा मेरी एक भी चीज मत छूना…"

कमरे के अन्दर और बरामदे मे महिम चक्कर काटता रहा। फिर जाने क्या सूझा कि स्टोव से माचिस की तीली छुआ दी। पूछा, "क्या-क्या लाई हो ?"

उम्मी की मा ने थैला फर्श पर उलट दिया।

बैंगन, मूलिया, आलू, गोभी, सेम, धनिया के पत्ते सामने फैल गए— सिमेंट का पक्का फर्श भभाकर हंस रहा था।

कलाकार का दिल नाच उठा। आंखें खुशी में फैल गई। उम्मी की मा के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "जियो रानी ! तुम कितनी अच्छी हो मामी ! कई दिनों से सेम याद आ रहे थे। महिम के मन की बात तुम्हारे सिवा और कौन समझेगा ?"

अब मामी भी मुस्कराई। चाकू लेकर सेम तराशने बैठी। महिम के नहाने के लिए पानी गरमाना था। स्टोव जल चुका था, पतीला चढ़ा दिया।

"तुम नहीं नहाओगी ?"

"पहले आप नहा लीजिए !"

"दोनों साथ नहीं नहा सकते !"

"तुम तो बच्चों जैसी बात करते हो !"

"तो मैं क्या बहुत बूढ़ा हो गया हूं ?"

"नहीं तो !"

"जानती हो, क्या उम्र है मेरी ?"

"बतलाओ भी।"

महिम की पलकें शरारत में भिप गईं, बोला, "सोलह की।"

दोनों हंसने लगे कि पड़ोसिन की बच्ची प्याज मांगने आई। महिम ने घूरकर छोकरी की ओर देखा और मामी की नजर बचाकर बाईं आंख दबाई। वह लेकिन महिम का इशारा पी गई और मामी की ओर देखती हुई खड़ी रही।

दस साल की सांवली-सलोनी देह···चेहरा साधारण। सिर के बाल घोंसले की याद दिला रहे थे। जाने कब से उनमें तेल नहीं पड़ा था ! गर्दन में मैल की तह जमी थी। बड़े-बड़ गन्दे नाखूनोंवाले हाथ-पैर खरोंच के निशानों की बदौलत ही ध्यान खींच रहे थे। बदरंग खाकी निकर और मर्दों के पहनावे की पुरानी बनियान पहने हुए थी।

महिम ने कहा, "अन्दर उस कमरे में तख्तपोश के नीचे पड़े हैं प्याज, जा, ले आ !"

वह कमरे की ओर जाने लगी तो मामी ने आंख से महिम को इशारा किया, "जाओ, देखो !"

महिम उसके पीछे कमरे के अन्दर गया।

बाहर निकली, हाथ में अच्छा-खासा बड़ा-सा प्याज था। मामी की भौंहों में बल पड़ गए···और, प्याज के नीचे लड़की की हथेली पर दस पैसे का सिक्का मुस्कराता रहा !

लड़की चली गई तो मामी ने कहा, "बचपन में ही भीख मांगने की ट्रेनिंग ले रही है।"

"क्या बुरा है ?" महिम बोला, "इस युग में हर भले आदमी को

इज्जत भीख पर टिकी है। तरीके बदल गए है, भिक्षावृत्ति की व्यापकता तो कई गुनी अधिक बढ़ गई है···और मामी, मुझे बड़ी खुशी होती है कि ब्राह्मणों का हमारा यह शानदार पेशा हमारी सरकार तक ने अपना लिया है···पड़ोस की बच्ची तुम से प्याज या हरी मिर्च मागने आती है और तुमको बुरा लगता है ! हमारी सरकार के कर्णधार छोटे-छोटे मुल्को की सरकारो के सामने हाथ फैलाते हैं जाकर, सोचो तो उनको कैसा लगता होगा ?"

पहले तो इस प्रवचन का मतलब उम्मी की मां की समझ मे नहीं आया, थोड़ी देर बाद उसी कमरे के अन्दर घी लाने गई तो अच्छी तरह सब कुछ समझ में आ गया। मुसल्लहपुर के देशी शराबखाने की ७५ पैसे वाली वह बोतल अभी आधा घण्टा पहले ही खाली हुई थी और इस वक्त कोने मे पुरानी ट्रंक से उठगकर ऊंघ रही थी।

इस तरह की सैकड़ों बोतलें सीढ़ियों के नीचे वाली खाली जगहों में पड़ी थीं। कई बार मामी के मन मे उन बोतलो को बेच देने का ख्याल *आया था लेकिन शर्म के मारे असमजस मे पड़ी थी—लोग क्या कहेंगे ?* खरीदार ही भला क्या समझेगा ?···आहिस्ता से उसने बोतल उठा ली, बाहर उन्हीं बोतलों के ढेर पर डाल दिया उसको। लगा कि दारू की बोतल नहीं, छछून्दर की लाश फेंक आई है, नफरत के मारे मामी का रोम-रोम झनझना रहा था। सास यो घुट रही थी मानो नाक के छेदो में एक-एक छटाक ब्लीचिंग पाउडर ठूस दिया गया हो !

नशे की हालत में महिम को घर के अन्दर अकेले नहीं छोड़ती थी वह। सारी-सारी रात, सारा-सारा दिन अगोरती थी। बाहर नही निकलने देती थी। गालियां और पिटाई झेलकर भी उसको बहलाने की कोशिश करती थी। इसी साधना में एक बार सिर फट गया था और दूसरी बार दो दांत टूट गए थे।

आज का नशा हल्का था। फिर भी मामी ने सोचा, 'खिला-पिलाकर सुला दूगी, गनीमत है कि बड़ी बोतल नही उठा लाए ! नहा रहे हैं ?

अच्छा है, 'माया ठंडा होगा···कमजोर भी तो है···खास रहे हैं, ज्यादा तो न नहा लिया ?···ले ही आऊं बाथरूम से।'

महिम नहाकर आ गया। कपड़े बदले।

कुर्ता उल्टा ही डाल लिया था। मामी को हंसी आई, बोली, "ठीक से पहन लीजिए।"

खाना तैयार था। सेम और आलू की साग, परांवठे और धनिया-हरी मिर्च की चटनी।

खाकर वह बाहर जाना चाहता था, पान खाने। मामी ने नहीं जाने दिया। खुद जाकर ले आई दो बीड़े। बोली, "जर्दा नहीं लाई हूं। पिपरमिंट डलवा दिया है···।"

जर्दा का अभ्यास नहीं था, शौकिया तौर पर महिम जी कभी-कभी ले लेते थे। नशे की स्थिति में लेने पर कै निश्चित था।

जरा देर कविताएं गुनगुनाते रहे फिर नींद आ गई।

स्नान-ध्यान, चौका-चूल्हा···सबसे निबटकर उम्मी की मां बाल बांधने बैठी, आईना सामने रख लिया था।

तेल से तर उंगलियां सूखे बालों में चिकनापन ला रही थीं।

आंखें आंखों से भिड़ती थीं बार-बार और बार-बार स्मृति के तारों में कंपन पैदा होता था। आपबीतियां फिल्मी रील की तरह दिमाग के प्रोजेक्टर पर घूमने लगीं···

[चौबीस-पचीस की उम्र का स्वस्थ-सुन्दर युवक। चेहरा बिल्कुल महिम का है···मोटे फ्रेम वाला वही चश्मा, वे ही घुंघराले बाल, कालर वाला वही कुर्ता, चमड़े का वही फोलियो···

[आओ! आओ! अन्दर आ जाओ! मैं अर्से से जिसका इंतजार कर रही थी तुम वही हो न? हो न वही? सिर तो हिला दो, हां, वही हो! और मैं तुम्हारी हूं···तुम्हारे लिए ही मेरा जन्म हुआ था। तुम मुझसे आठ वर्ष बाद पैदा हुए थे न? तो क्या हुआ? वासना की कोई उम्र नहीं

होती । जो प्यार को आयु के गज़ से नापते है उन जैसा कूढमग्ज दुनिया मे भला और कौन होगा ?

[जिस व्यक्ति ने इस मांग मे सिंदूर भरा था, अपना कलेजा किसी और डाल मे टांगे रहता था। मैं उसके लिए मशीन थी, वंशवर्धन यन्त्र !···तीन बच्चे हुए। लडकी है, सोलह साल की···बाकी दोनो लड़के हैं···लड़की अभी-अभी तुम्हे झाक गई है, नागिन-सी छरहरी और खूबसूरत है। मैं भी कभी इसी कदकाठी की थी। आंख-नाक-होठ-गाल, सब कुछ तो मिलता है। हां, ठुड्डी पर गौर करोगे तो बाप ही की बेटी साबित होगी।

[दस रोज : बीस रोज : महीना : दो महीने···तीन, चार, साढ़े चार, साढ़े चार महीने···तुम साथ रहते हो। चार-चार सौ, छः-छः सौ रुपये कमा लेते हो···सारी की सारी रकम मुझे थमा देते हो ! बाबा रे बाबा, ऐसा भी क्या किसीने आदमी देखा होगा ? खुद अपने पर पचास रुपये भी नही लगाता है ? गाव के रिश्ते से वो तुम्हारे मामा निकल आए, तो लो, अब मैं तुम्हारी मामी हुई ! हुई न मामी ? नही हुई ?

[मैं तुम्हारे साथ देवघर की एक धर्मशाला मे हूं···हफ्ता-भर बाद पंडा जी ने हमारे लिए अलग मकान ढूढ दिया है ··छोटा लड़का और नौकर साथ है···बदहजमी थी न ? अपना वह डाक्टर भी क्या हीरा आदमी है ! बाबू जी (पति) ने लिखा है, "डाक्टर की राय है कि तुम दो-ढाई महीना और रहो···" पत्र पढकर तुम मुस्करा उठे हो और मैं गालो पर तुम्हारे लिए एक-एक चपत का इनाम रख रही हूं ! देवघर का पहाड़ी इलाका : चैत की चांदनी रात : तुम और मैं···!

[हाय ! यह तुम्हे क्या हो गया है ? उचाट हो गई है मुझसे ? नहीं, नही, ऐसा नही करो ! मैं तो बस खत्म ही हो जाऊंगी···मामी की अर्थी में कन्धे भी नही लगाओगे ? इस तरह ऊब गए हो ? ओह, अब मैं क्या करूं ? कैसे बांधू तुम्हारे इस मन को ? उम्मी को कर दू हवाले ! वो शायद तुम्हें काबू मे ले आएगी ! मैं ठूठ हो गई हूं न ? तो लो, मेरी

कोंपल से अपनी तबीयत बहलाओ ! ...बहरहाल, मुझसे पिंड नहीं छूटेगा तुम्हारा !

[उम्मी और महिम : महिम और उम्मी...रिक्शा पर साथ बैठते हैं, जाते हैं और आते हैं। नदी में तैरते हैं, सिनेमा देखते हैं, बाजार घूम आते हैं। पिता ने भी काफी छूट दे रखी है। कहते हैं, "देखो, हमारी उम्मी महिम से प्रिंटिंग सीख रही है...ला बेटा, कापी तो लेती आ ! देखा, कैसा कमाल कर रही है हमारी उम्मी ? बतख, मोर, उल्लू, मैना... गुलाब, कमल, कनेर, चंपा...हाथी, ऊंट, बिल्ली, सूअर...मकान, जंगल, इन्द्रधनुष, नाव...रेखाएं उम्मी की है तो रंग महिम के, उम्मी के रंग तो रेखाएं महिम की ! ...और मैं उम्मी से जलने लगी हूं।

[लो, उम्मी का महिम से सब कुछ हो गया ! छै-सात महीने बाद *उम्मी मां होगी, तब मैं नानी कहलाऊंगी ?...बिना शादी के ही* वह मां बन जाएगी ? राम ! राम ! लोग क्या कहेंगे ?

[भागलपुर में गंगा-किनारे बाबा बूढ़ानाथ के मन्दिर की अंगनई में उम्मी और महिम का ब्याह हो रहा है...वो इसके खिलाफ थे, उनसे झगड़कर उम्मी को ले आई हूं। मांग में सिंदूर पड़ जाएगा तो नाहक एक जीव की हत्या तो न होगी ! कितना सीधा है महिम, शादी के लिए चट से तैयार हो गया !

[महिम ने शुजागंज में रेलवे लाइन से दच्छिन भाड़े पर मकान लिया है लेकिन उम्मी अकेले कैसे रहेगी ? एक दिन के लिए भी कभी अकेली रही नहीं आज तक ! ...मैं साथ रहने लगी हूं...महिम और उम्मी और मां यानी मैं...उम्मी का सुहाग मेरे धैर्य को चुनौती दे रहा है। रात को बगल के कमरे में वे दोनों जागते होते हैं, मैं चूड़ियों की खनखनाहट सुनती हूं और मेरे अन्दर की प्यासी चुड़ैल का जंगली नाच शुरू हो जाता है...मैं घात लगाए रहती हूं। उम्मी के सोते ही महिम को खींच लाती हूं अपने बिस्तरे पर...फिर क्या होता है ? वासना की विकट आंच में झुलसी हुई राक्षसी उस मर्द को मथने लगी है...मथ कर छोड़ देती है।...अतृप्त

लालसा की यह ताण्डव लीला हर रात चलती है !

[एक रात उम्मी यह सब देख लेती है ! मां के प्रति बेटी की रग-रग मे घृणा का जहर फैल जाता है और अगले ही दिन वह पिता के पास वापस आती है···महिम के लिए जो भी कुछ स्नेह था वह पूरी तरह फट चुका होता है ।

[पिता उम्मी की चिकित्सा करवाता है : मा बनने का खतरा टल गया : स्वास्थ्य-लाभ, धूमधाम से अपनी बिरादरी में प्रकट तौर पर शादी !

[उम्मी, तूने यह अच्छा बदला लिया !···अब मैं भला वापस जाती ?···महिम, तुम्हारे बिना मैं कैसे जिन्दा रहती ? दुनिया जो चाहे कह ले, मैं नही छोड़ती तुम्हे ! ना !···सास-दामाद का रिश्ता तो महज दिखावे का रिश्ता था हमारा, दरअस्ल हम पिछले जन्म के पति-पत्नी थे ।]

कम्पाउण्डर की बीवी ने आकर याद दिलाया, "गन्ना नही चूसना है दीदी ?···आऊं, मैं बांध दू बाल ? कब से बैठी हो···।"

"नहीं ।" उम्मी की मां बोली, "कई रोज़ से बालों में साबुन नही लगा सकी हूं, कल आधा घण्टा माथा मलके नहाऊंगी । तुम चलो, मैं आती हूं···"

१२

छोटी साली का ब्याह था । पत्नी और बच्चे उसमें शामिल होने वाले थे । दिवाकर को पांच सौ रुपये का नोटिस प्रतिभामा की तरफ से मिल चुका था ।

अतिरिक्त आय का कोई और सिलसिला दिवाकर के लिए रह नही

गया था। गुप्ता ब्रदर्स, श्याम लाल एण्ड सन्ज़, साहित्य-सदन, किताब कुंज आदि जितने भी प्रकाशक थे, स्कूली किताबों के पीछे पागल थे। उनका यह पागलपन औरों की निगाह में भले ही पागलपन हो, अपने लिए तो 'लाभ-शुभ' का नाटक था, लक्ष्मी का वरदान! प्रतिभाशाली युवक साहित्य-कारों की किताबें अव्वल तो वे लेते ही नहीं थे और यदि लेकर छाप भी लेते तो अंधेरे गुदामों में उन किताबों की रूह दस-दस साल तक घुटती रहती ''मंजूरशुदा स्कूली किताबें इन प्रकाशकों के लिए खड़ी फसल थी और उस फसल को हथियाने के लिए वे क्या नहीं करते थे? 'शह और मात' का उनका यह आत्मघाती खेल आपस में तो चलता ही था, दूसरे धन्धों में लगे हुए लोग भी उनकी तिकड़मों का शिकार होते थे। कभी-कभी पासा पलट भी जाता था, शकुनि और दुर्योधन खुद ही पिट जाते थे। इन प्रकाशकों में से दो-एक की दिवाकर से अच्छी घनिष्ठता थी।

'३४ से '४६ तक—तेरह वर्ष साप्ताहिक 'शंखनाद' निकाला, चार बार जेल गए, एक दिवंगत क्रांतिकारी मित्र की पत्नी का हाथ पकड़ा और द्रौपदी बनाकर छोड़ दिया'''दो मिनिस्टरों के लिए अभिनन्दन-ग्रन्थ तैयार करवाए, एक वयोवृद्ध प्रकाशक की स्वर्ण जयंती मनवाई—कैंची और गोंद और रद्दी-पुरानी रीडरों से इन कई वर्षों में पचासों रीडरें औरों के नाम से तैयार कीं, प्रकाशकों से रुपये लिये'''पिताजी और बड़े भाई की मृत्यु के बाद पालिटिक्स छूट गया। पटना आकर एक दैनिक समाचार पत्र के टेबुल पर झुक जाना पड़ा'''नौकरी और अटरम-शटरम दोनों साथ-साथ चलते आए। पीछे सरकारी सूचना विभाग में पैम्फलेट एडिट करने का काम मिल गया'''दिवाकर जी की कमाई कम नहीं थी मगर खर्चा भारी था। परिवार का पिछला कर्ज़ चुकाया था, गांव में पक्की ईंटों के खपरैलों वाले दो मकान बनवा लिए थे, भतीजे को परचून की दुकान खुलवा दी थी। बड़ा लड़का एम०ए० के बाद दो साल हाई स्कूल की मास्टरी करता रहा और पब्लिक सर्विस कमीशन के अखाड़े में उतरा तो पहली बार नहीं, दूसरी बार छत्तीसवां पोज़ीशन पा गया और अब ज़िला

सहरसा के किसी थाने में ब्लाक डेवलपमेण्ट आफिसर था। अब समय आ रहा था कि दिवाकर जी नौकरी छोड़कर फिर से सक्रिय राजनीति में कूद पड़ें और दो-ढाई साल की कसरत के बाद विधान सभा की उम्मीदवारी के लिए कांग्रेस में किसी न किसी गुट के जरिये अपने नाम की सिफारिश हाई कमाण्ड तक पहुंचवा दें और नयी दिल्ली के नये देवाधिदेव शायद द्रवित भी हो जाएं !…

इस तरह की बातें दिमाग में आतीं तो दिवाकर शास्त्री अपने अन्दर एक अद्‌भुत प्रकार की मादकता महसूस करते और अगले ही क्षण उनका पार्थिव ढाचा रिक्शे पर लदकर काफी हाउस की ओर जा रहा होता।

बी० एन० कालेज के सामने वाला काफी हाउस…भुने हुए नमकीन काजू…पानी का गिलास…सिगरेट का धुआं और दिवाकर जी।

दिवाकर शास्त्री एम० एल० ए०…दिवाकर शास्त्री एम० पी०… दिवाकर शास्त्री एम० एल० सी०…काजू के दाने और पानी का घूट ! पानी का घूंट और सिगरेट का धुआं !…सिगरेट का धुआ और काफी की चुस्की !…काफी की चुस्की और काजू के दाने…

"ए जी, सुनते हो ?"

"क्या चाहिए ?"

"काजू थोडा और ले जाओ !"

"अच्छा !"

'अच्छा !…' दिवाकर के होंठ बुदबुदाए…अच्छा ! अच्छा !… कान जाने कौन-सा शब्द सुनना चाहते थे, जाने किस प्रतिशब्द का मिठास —किस प्रत्युत्तर की तरावट कानो को दरकार थे !…रेस्तरां और होटलों मे उत्तर भारत के बैरे जिस तरह मेजों पर ग्राहकों के सामने 'हजूर-हजूर', 'सरकार-सरकार' की झड़ी लगाए रहते हैं, दक्षिण भारत में वैसा रिवाज नही है। काफी हाउस के उस कर्मचारी के मुंह से शायद इसी प्रकार का कोई शब्द दिवाकर के कान सुनना चाहते होंगे ! नही ? काफी का गिलास खाली नही हुआ था लेकिन दिवाकर के दिमाग से राजनैतिक

भविष्य की खुमारी का गुलाबी भाग गायब हो चुका था। मन के संतुलन का काटा सही नुक्ते पर आ लगा तो शास्त्री को साफ-साफ दिखाई पडा : १५ अगस्त, '४७ से पहले का वह राजनीतिक मैदान बहुत बदल गया है। दाव-पेच बदल गए है। बोली बदल गई है। इशारा बदल गया है। खिलाडियो की नीयत बदल गई है···पहले वाला वह लक्ष्य जाने किधर ओझल हो गया? ऊसर जमीन की मिट्टी घोलकर नमक बनाते-बनाते हजारों सत्याग्रही पुलिस की लाठिया खाते थे, विदेशी माल की खरीद-फरोख्त के खिलाफ दूकानो के समक्ष धरना देते थे, किसानो-मजदूरो और मध्यवर्ग के दीन-दुखी लोगो को मुसीबतो से छुटकारा पाने का आश्वासन मिलता था···उन दिनो राजनीतिक मैदान बिल्कुल सपाट था···और आज? खाइया है, टीले है, बालू है, दलदल है, दरारे है, जहरीली घास है, कंटीले झाड़-झंखाड है ··आगे बढने का मनसूबा तोडने के लिए वह कौन-सी अड़चन है जो इस मैदान के अन्दर नही है?···हां, इतना तो है कि हर बुरे-भले काम मे महाप्रभुओ का साथ देते रहोगे तो भौतिक लाभ अवश्य होगा। लडका डिविजनल आफिसर बन जाएगा, भतीजे को भारत सेवक समाज की ओर से ठेकेदारी मिल जाएगी, छोटा भाई मुखिया होगा और भाजे को चीनी मिल मे क्लर्की मिलेगी!···अब और क्या चाहते हो दिवाकर? जिला बोर्ड के चेयरमैन बनोगे? शास्त्री की डिग्री है, ग्रेजुएट तो हुए ही! तो फिर बिहार विश्वविद्यालय की सिनेट में नही आ सकते?···

काफी हाउस का बिल चुकता करके दिवाकर बाहर आ गया। पान के दो बीड़े लिये। निगाहे गाधी मैदान की तरफ उठी, कानो के अन्दर लेकिन फिल्मी धुन घुस आई।

> "मैंने जीना सीख लिया
> पाप कहो या पुण्य कहो
> मैंने पीना सीख लिया···"

[और, पीने के लिए उकसाने वाली इस कड़ी ने उसके ध्यान मे

महिम को लाके खड़ा कर दिया : हां, महिम ने पीना सीख लिया···
अब तुम चाहे इसे पाप कहो या पुण्य कहो, महिम तो शराब नही छोड़ेगा !
छोड़ देगा ? अजी नही, तुम्हें अंगूठा दिखला-दिखलाकर पीता रहेगा।···
महिम लेकिन दो-चार वर्ष से अधिक जिएगा नही ! उसे देखकर दिल को
झटका लगता है, सोने की हड्डियां गिन सकते हो। हसता है तो आखें भया-
नक हो उठती है और गालों के गड्ढे देखकर पीले पत्तो के दोने याद आते
है। कल शाम को ही तो मिला था महिम। अंजुमन इस्लामिया हाल
के हाते में और अन्दर कर्घा उद्योग वाली कोआपरेटिव यूनियन द्वारा
आयोजित प्रदर्शनी का आखिरी दिन था। मैं अन्दर गया और शंकर जी
घूम-घूमकर मुझे नुमायश का अलग-अलग हिस्सा दिखलाने लगे। इसी
बीच कब और कैसे महिम चुपचाप मेरे पीछे लग गया, राम जाने ! देख-
भर लिया होता तो ठीक था, लेकिन उसे टोककर भारी मुसीबत बुला
ली···महिम की बकवास भड़क उठी :

["दिवाकर भाई, पता है आपको ? अभी-अभी थोडी देर पहले महा-
महिम राज्यपाल यहां आए थे। आप बतला सकते है, क्यों आए थे
राज्यपाल ? नही बतलाएंगे ? तो मुझसे सुन लीजिए···। वो आए थे
हमारी जनता की जहालत और गरीबी को दुआ देने ! आज के हमारे
ये श्रीमंत महानुभाव नही चाहते कि विज्ञान के सूर्य की एक भी किरण
दूर-देहात के उन कुटीरों तक पहुंचे···बड़े शहरों के अन्दर बिजली की
बदौलत ग्रामोद्योग की तथाकथित सफलताओं का यह दिखावा धोखा है
दिवाकर भाई, बिल्कुल धोखा।···

[मैंने महिम के मुह पर अपनी हथेली रख दी, खीचकर हाल के
पिछवाड़े ले जाने लगा। बीस-पचीस आदमी इकट्ठे हो गए थे। श्रोताओं
की उत्सुक आखें और चेहरों पर तत्परता के भाव उसकी बकवास को
भडका रहे थे। हाथापाई करके महिम मुझसे छुटकारा चाहता था, उसे
इतनी अधिक तादाद में मुस्तैद श्रोता जो मिल रहे थे।···मगर मैंने
उसकी एक नही मानी, खीच-खांचकर हाल के पिछवाड़े ले आया।

शंकर जी पीछे-पीछे दौड़ आए। उनसे कहा, "महिम के लिए नाश्ता और चाय मंगवा लीजिए।" महिम के कान से होंठ सटाकर बोला, "देखो, रसगुल्ले आ रहे हैं तुम्हारे लिए!"

["संदेश नहीं ? खीरमोहन नहीं ?"—आंखें नचाकर महिम ने कहा, "मैं अकेले नहीं खाऊंगा दिवाकर भाई। आपको भी साथ देना पड़ेगा··· भाग तो नहीं जाइएगा ?"

["सब कुछ आ रहा है," मैं बोला, "साथ ही नाश्ता करेंगे!"

[···इस तरह बड़ी मुश्किल से कल मैंने महिम को काबू में किया। खिला-पिलाकर वापस ले आया मकान में।···]

दिवाकर मैदान की परिक्रमा करते रहे और दुनियाभर की बातें सोचते रहे। थकावट महसूस हुई तो रिक्शा लेकर स्टेशन चले गए, बुक-स्टाल से पत्र-पत्रिकाएं लेनी थीं।

शाम को तिलकधारीदास से मुलाकात हुई। उसने पूछा, 'शास्त्री जी, बाकी दो किताबें कब दे रहे हैं ?"

"होली के बाद लीजिएगा।" दिवाकर ने कहा।

दिवाकर की तरफ पान के बीड़े बढ़ाता हुआ वह मुसकुराया, कहने लगा, "साहित्यिकों से बड़ा डर लगता है शास्त्री जी! जाने कितनों की एडवान्स रकम पचाकर साहित्यकार 'विशुद्ध साहित्यकार' बनता है!—जाने कितनी पाण्डुलिपियां आप लोगों की कृपा से प्रकाशक की दराज़ में अधूरी पड़ी होंगी!"

पान लेकर दिवाकर ने माथा हिलाया। बोला, "साहित्यकार को भी ठीक इसी तरह प्रकाशकों से बड़ा डर लगता है। प्रकाशकों के प्रति उसकी भी सौ शिकायतें हैं···लेकिन मैं आप से एक बात पूछता हूं···आप इस धन्धे में आखिर आए ही क्यों ?"

दास जी हंसने लगा, बोल गया, "मैं इस धन्धे में नहीं आता तो आप से इतनी किताबें भला और कौन लिखवाता ?"

दिवाकर को भी हंसी आ गई।

हाल की छपी एक किताब का कवर देखता रहा फिर अच्छी छपाई और कागज़ के अकाल पर बातें होती रहीं।

थोड़ी देर बाद नेपाली नौकर ने आकर कहा, "हजूर, खाना तइयार है।"

दिवाकर तिलकधारीदास से एक बात और पूछना चाहता था। नेपाली से कहा, "चलो, आता हूं।"

उठते-उठते दास जी से दबी आवाज में पूछा, "उस लड़की का पता चला? आपकी तो शर्मा जी से मुलाकात होती होगी!"

तिलकधारीदास ने कहा, "वह तो भागलपुर है, मामा के पास। चिट्ठी आई है।"

"चलिए अच्छा हुआ। फिक्र थी।"

"फिक्र की तो बात ही थी न!"

"लेकिन इस तरह बिना बतलाए क्यों चली गई?"

"क्या बतलाया जाय!"

दास जी को यद्यपि स्वयं ही नही मालूम था कि भुवन कहां है। दिवाकर से यों ही कुछ बतला रहे थे। कपार छूकर उंगली को नचाया। दिवाकर ने इसपर कहा, "नहीं, नही, उसका माथा खराब नहीं था! हा, किस्मत खोटी हो सकती है।"

"किसमत क्यों खोटी रहेगी?"—तिलकधारीदास बोला, "शर्मा जी की हैसियत मालूम नही है आपको?"

शास्त्री जी चुपचाप दूकान से नीचे उतर आए, शर्मा जी की हैसियत के खिलाफ कुछ भी कहना असंगत और अनावश्यक लगा।

१३

संजीवन-ग्राश्रम।

"सपरिवार ठहरने का स्थान और भोजनालय। अनाथ महिलाओं द्वारा संचालित"—बाहर तख्ती पर छोटे अक्षरों में लिखा था।

पटना सिटी और गंगा का किनारा···नगर की उत्तरी छोर पर घनी आवादी वाला मुहल्ला। बाढ़ से सुरक्षा के लिए बंधे हुए पक्के घाट, नीचे उतरने के लिए सुन्दर सीढ़ियां।

उत्तर तरफ सामने मुंह करके देखने पर जौ-गेहूं की पकी फसलों से सुनहला दियारा···जरा हटकर गंगा की पतली धारा।

बांकीपुर वाली उस धर्मशाला से हटकर बुआ और नेपालिन संजीवन-ग्राश्रम आ गई थीं, शर्मा जी पहुंचा गए थे। यह कोई नई जगह नहीं थी उनके लिए, कई बार आ चुके थे, रह चुके थे।

स्त्रियों की तादाद ज्यादा थी, मर्द कम थे। शक्लें नई-नई दिखाई पड़ती थीं। मकान पुरानी किस्म का और दुतल्ला था। ऊपर दस कमरे, बीच की खाली जगह छोड़कर चारों तरफ बरामदा था। नीचे गुदाम के लिए बड़े-बड़े हाल थे, बीच में पक्की फर्श वाला आंगन। आगन के एक कोने में नीम का पुराना पेड़ था। पेड़ की जड़ में तीन-चार पत्थर···गोल-गोल—लोढ़ानुमा। एक त्रिशूल गड़ा था। हनुमान की मूर्ति थी जिसका सिंदूर फीका पड़ गया था और झरे हुए सूखे पत्तों से पैर ढक गए थे।

पहचान की तीन औरतें बुआ से बातें कर रही थीं। उनमें से एक युवती और स्वस्थ थी, सुन्दर नहीं तो असुन्दर भी नहीं। दूसरी थी भुवनेसरी की तरह कम उम्र की और खूबसूरत। तीसरी अधेड़ थी, साधारण।

कम उम्र वाली लड़की ने पूछ दिया, "बुआ, भुवन अब नहीं लौटेगी?"

बुआ तो चुप रहीं, युवती ने तड़ाक् से जवाब दिया, "वो तेरा समझ होती थी? जा, नहीं लौटेगी।"

"साथ सोती थी एक-दूसरी से चिपटकर"—जो अधेड़ थी वह बोली

और दांत निकालकर खि-खि-खि करने लगी।

छोकरी ने कहा, "भुवन का मन नही लगता था यहा···।"

युवती ने भौंहे नचाकर कहा, "तेरा मन लगता है ?"

अधेड औरत हंसने लगी, "क्यों नही लगेगा मन ? नया-नया मर्द मिलता है, नई-नई बोतल और नया-नया पानी···।"

छोकरी ने उसके चेहरे की ओर देखा, तमक कर कहने लगी, "तेरी तो तबीयत मर्दों से अघा गई है न ? उस रोज शाम को छंटी दाढ़ीवाला बुड्ढा जमादार कहा लिये जा रहा था टमटम पर बैठा कर ? और उस रोज़ गगा की रेती पर धूप मे किसकी मालिश कर रही थी ? और···।"

नज़रों के इशारे से बुआ ने डाटा, छोकरी चुप हो गई।

नेपालिन चाय ले आई। सिर्फ बुआ के लिए एक कप।

दो घूट पीकर बुआ ने युवती से कहा, "बात कूटने से क्या होगा ! जो जहा है, गर्दन तक कीचड मे धसा है। रंडिया नही होंगी तो भी उनका धंधा ज़िन्दा रहेगा। हमने बड़े-बड़े ज्ञानी देखे है। वे बातें तो इतनी अच्छी करते है कि सुन-सुनकर निहाल हो जाओगी, लेकिन···"

"सब समझती हूं चम्पा बहन," युवती ने बीच मे ही कहा और कप की ओर उंगली उठाकर चाय की याद दिलाई—"ठंढी हो जाएगी !"

चम्पा चाय पी चुकी तो पान लिया। क्षणभर बाद गंभीर होकर कहने लगी, "मर्द और औरत एक-दूसरे के बिना रह नही सकते। एक की बोली दूसरे के लिए शहद है। एक की चितवन दूसरे के लिए बिजली है। उसकी गन्ध इसके लिए चन्दन है। यह छू देगी तो उस ठूठ से टूसे निकल आएगे।"

युवती हंसकर बोली, "तुम्हारी यह बात कानों को तो बहुत अच्छी लगती है मुदा दिल इसपर क्या कहता है, बतलाऊ ?"

"बतलाओ कुन्ती, ज़रूर बतलाओ !" चम्पा ने कहा।

कुन्ती कहने लगी, "अगर ऐसी बात है तो क्यो औरतें बिकती है ? क्यो उनपर डाक बोली जाती है ? क्यों उन्हें बाड़े के अन्दर कैद रखा

जाता है ? मामूली भूल-चूक पर औरतों को क्यों घर से निकाल देते है ? चम्पा बहन, हम क्या अच्छे घर की अच्छी बहुएं नही होतीं ? मुझे और तुम्हे किसने बर्बाद किया ? अच्छा चम्पा बहन तुम अपने इस जीवन मे खुश हो ?"

चम्पा ने माथा हिलाकर कहा, "नही, खुश नही हूं । कोई भी औरत खुश नही है कुन्ती । अच्छे घर की अच्छी बहुओं से जाकर पूछो, वे भी खुश नही है । हा, हमारी घुटन और किस्म की है तो उनकी घुटन और ही किस्म की होगी···!"

वह अधेड़ औरत इन बातो मे दिलचस्पी नही ले सकी, उठकर चली गई । लडकी अन्दर कमरे मे जाकर नेपालिन से बातें करने लगी । चम्पा ने इधर-उधर देखा, कोई नही था । आश्वस्त होकर कहा, "अब तुमसे मैं क्या छिपाऊ, भुवनेसरी हमेशा के लिए चली गई । शर्मा जी ने उसके लिए बड़ी अच्छी जगह ठीक कर दी थी । मालदार आदमी था । पत्नी चल बसी थी, दो छोटे बच्चे थे । उनकी और अपनी देखभाल के लिए उसको किसी सयानी औरत की आवश्यकता थी । बच्चे बडे हो जाते तो पाच-सात वर्ष बाद वह उसी स्त्री से शादी कर लेता । बाप ने तीस साल तक स्कूली किताब छाप-छापकर लाखो की रकम बटोरी थी, एक बड़े शहर मे कई किता मकान थे । शर्मा जी बात पक्की कर चुके थे । नुमायश घूमते समय अलग से आकर एक बार वह भुवन को देख भी गया था···अब इसको क्या कहोगी ! हाथो मे अमृत का घड़ा लेकर विधाता सामने खड़ा था और तुम झाड़ू मार-मारकर उस बेचारे को खदेड़ आई ।"

कुन्ती मन ही मन बोली, 'शाबास भुवन, शाबास ! उस खूसट को तुमने बड़ी सफाई से अंगूठा दिखा दिया, बलिहारी है ! शर्मा जी भी खूब छके ! बड़े आए बाप और चाचा बनने वाले ! ···इस बुड्ढे की नाक में छल्ला डालकर, भुवन, तुमने अपनी ही नही बल्कि सभी औरतो की नाक रख ली ! ···'

प्रकट तौर पर उसने कहा, "मैं तो भुवन को चालाक समझती थी,

वो तो भारी गधी निकली चम्पा वहन !"

फिर कान के पास मुंह ले जाकर बोली, "मेरे लिए भी शर्मा जी से कहो न ? तंग आ गई हू इस आश्रम से। गंगा जी में छलाग लगाए बिना क्या छुटकारा नहीं मिलेगा दीदी ?"

चम्पा ने ढेर-सी सांस छोड़ी, गर्दन उठाकर देखा। नील-निर्मल आकाश और विराट् सूनापन, चम्पा को लगा कि यह उसकी ही रिक्तता असीम और नीलाभ बनकर ऊपर छाई हुई है। दिन का वक्त है। ढलता सूरज पच्छिम की तरफ मकान की ओट मे चला गया है। तारे नहीं है तो नीलिमा और सूनापन दिल पर और भी गहरा असर डालते हैं···कुल मिलाकर कितना अच्छा लगता है···खो गई चम्पा ! गर्दन उसी तरह ऊपर की ओर थी, आंखें उठी हुई !···दिल के अन्दर किसी खोह से आवाज आई : चली गई, भुवन तुमने ठीक ही किया ! मालदार तो मतलब का ही सौदा करता है···तुमसे तबीयत भर जाती तो दूसरी का सौदा करता ! पेट भरा हो और टेंट मे काफी रकम हो तो हरी-हरी चरना चाहेगा आदमी···नही, तुमने अच्छा किया भुवन ! इस कुम्भीपाक से निकल भागी, खूब किया !···

कुन्ती ने कंधे पर हाथ रखकर चम्पा को हिलाया।

"क्या सोच रही थीं ?"

"कुछ नही।"

"नही बतलाओगी दीदी ?"

"बात भी तो हो कुछ !"

"आसमान की ओर मुह करके क्या देख रही थी ?"

"कुछ नही कुन्ती, आसमान में भला क्या देखूगी ?"

"छिपाती हो मुझसे ! कोई याद आ रहा होगा···।"

चम्पा को हंसी आ गई, बोली, "कुन्ती, भारी शैतान है तू !"

कुन्ती ने खिलखिलाकर कहा,"इस मकान में राम जी की दया से देवी और शैतान दोनों साथ रहते है। वे एक ही चौके में खाना खाते है, एक ही

नल का पानी पीते हैं। दोनों का दिल एक है···।"

चम्पा ने उसके सिर पर हल्की चपत बैठाई, "पाजी कहीं की !"

कुन्ती ने कहा, "चलो, अन्दर ताश खेलें !"

"नहीं, अभी नहीं," चम्पा बोली, "कुछ काम है कुन्ती !"

"अच्छा !" मुंह बनाकर कुन्ती ने कहा और चौके की ओर चल पड़ी।

रसोइया नौजवान था। अच्छी शकल-सूरत वाला। बीच में आकर चाबी ले गया था। दुबारा आकर चम्पा से पूछने लगा, "रात क्या तरकारी बनेगी ?"

चम्पा ने कहा, "आलू और गोभी का फूल ले आओ, बथुआ मिले तो रायता बना लेना।"

"अच्छा हजूर !"

"कुन्ती से नहीं पूछ लिया ?"

"पूछा तो था, आपके पास भेजा है···।"

रसोइया चला गया।

चम्पा के दिमाग में भुवन घूम रही थी। बरामदे में तख्त तो था, गद्दा नहीं था उस पर। लेटने का जी कर रहा था। वह अन्दर कमरे में गई कि नेपालिन से कहकर गद्दा डलवा लेगी बाहर।

लेकिन उस दूसरे गद्दे पर नेपालिन और वह लड़की सो रही थी, गप-शप करती-करती जाने कब सो गई थी !

चम्पा को कुछ याद आ गया, ट्रंक खोलकर तीनों लिफाफे निकाल लिए जिनके अन्दर बहुत-सारे फोटो रखे थे !

मोढ़ा खींचकर बैठ गई और फोटो देखने लगी।

बड़ी आंखों वाली युवती : चेहरा बड़ा ही आकर्षक है···मनोरमा, तू जालंधर पहुंच गई न। तेरा मर्द सरदार है। कलकत्ते में बारह वर्ष टैक्सी चलाई है। पहले लाहौर और जमशेदपुर रह चुका है। सरदार ने कई जगहों पर औरतें खोजीं, छांट कर आखिर तुझे ले गया। हमारी मांग

ढाई हजार की थी, सरदार ने अठारह सौ दिये···शर्मा जी को डेढ सौ का सूट दिया और मुझे सौ की साडी दी थी। सलवार और कुर्ती—साटन के उस सूट में तू कितनी जच रही थी !

खूबसूरत जवान : बाल कितने अच्छे है···ब्रजनन्दन, तुम मुझे कितना प्यार करते थे ! हमारा रहना होता था उन दिनो पूर्णिया के भट्ठा बाजार मे, तुम कटिहार से आकर अक्सर मिल जाते थे। समस्तीपुर से बदलकर कटिहार आए थे न ? पार्सल क्लर्क की ड्यूटी थी···कपड़े, चीनी, फल, मेवे, बिस्कुट के डिब्बे, लालटेन, टार्च···तुम कितनी चीजें लाते थे ? तुम्हारी दी हुई टार्च तो बल्कि आज भी मेरे पास है ! तुम्हारी बीवी आ गई फिर हमारा मिलना-जुलना बन्द हो गया। दरअसल वह बड़े ही शक्की स्वभाव की औरत थी। पिछले साल सोनपुर मे तुम दिखाई पड़े। दस वर्षों में क्या से क्या हो गए हो ! पूछा तो बोले—सात बच्चों का बाप हूं, जिन्दगी-भर क्या वही कदर्पनारायण बना रहूंगा ? और, भाभी तुम भी ढल गई हो, आईना नही देखा है ?···हा, ब्रजनन्दन देखा है आईना। रोज देखती हूं और रोज याद आते हो। तुम मेरे लिए सखा भी थे, सखी भी थे ! झूठ कहती हूं ? उकड़ू होकर और पीठ पर झुक कर बाल नही संवारते थे मेरे ? जुडा नही बांधते थे ? चोटी नही गूथते थे ? बंगला नाटको के लिए ग्रीनरूम मे अभिनेत्रियो का केश-विन्यास तुम्हारे ही हाथों सम्पन्न होता था···लेकिन यह भागलपुर की बात है और तब तुम कालेज के छात्र थे···ओह, हम एक-दूसरे के दिल मे कितना अधिक धस गए ! कितना अधिक मालूम कर लिया था हमने एक-दूसरे के बारे में !

औरतो के तीन चेहरे : अकेली मन्नो से जितना लाभ हुआ, उतना भी इनसे नही हुआ···एक को बनारस में किसी सन्यासी के हवाले किया, दूसरी वही एक मन्त्री की रखैल बन गई और तीसरी कलकत्ते मे है एक अफगान के पास। पन्द्रह सौ भी आए होते !

एक नेपाली परिवार के साथ : दार्जिलिंग···सहेली के भाई की शादी

में पहाड़ पर गई थी। विराटनगर ससुराल था, दार्जिलिंग मायका।

दो छोटे बच्चे : दार्जिलिंग वाले उसी परिवार के दोनो बच्चे है··· बटन-जैसी छोटी आखो वाला यह बच्चा कितना हिल-मिल गया था मुझसे ! देखते ही लपकता था !

छोटा कुत्ता : विराटनगर···सहेली के ससुराल वालो का कुत्ता। इसे उन लोगो ने किसी भोटिया व्यापारी से खरीदा था···नवाबजादे मेरी गोद मे सो जाते थे आकर ?

शर्मा जी : जयनगर···अनाथ औरतों की खोज-खबर लेने का प्रयास आपने यही से आरम्भ किया। जयनगर के नजदीक भारत-नेपाल सीमा से लगी हुई एक वस्ती थी जो शर्मा जी की बहन के अधिकार मे थी। इनकी जवानी बहन की जमीन्दारी का इन्तजाम करने में गुजरी। जिला का सदर मुकाम होने की वजह से लहेरियासराय जाना-आना लगा ही रहता था। बीस रुपये पर तीन कमरे ले रखे थे। भूली-भटकी और शरण में आई हुई औरतो के लिए पहला विश्राम-केन्द्र उन्ही कमरों को बनाया गया ···'अनाथ महिला सेवासदन' मुहर बन गई, साइनबोर्ड टंग गया··· मुहर तो अब भी कही पडी होगी !

वर-वधुओं के दो जोड़े : आर्यसमाज मन्दिर···ये विवाह शर्मा जी ने करवाए थे। दान के तौर पर संस्थाओं को पाच सौ की रकम दिलवा दी थी। स्त्रियां समाज से बहिष्कृत और आश्रयहीन थी, पुरुष सिंध और पजाब के थे, जिनका उधर कहीं ब्याह नही हो सका था···हवनशाला के इर्द-गिर्द पत्तों और कागज की झंडियो वाली रस्सिया टगी है, बीचोबीच हवन कुंड दिखाई पड़ रहा है।···

शर्मा जी का बड़ा लड़का : सूट-बूट डाटकर इंटरव्यू के लिए जा रहा है···आज-कल छोटानागपुर के किसी थाने मे दारोगा है।

कालीमाई की प्रतिमा और भैरवी : बागबाजार के पास हुगली के किनारे···। शोभाबाजार में बासा था। जाड़े की धूप में अवसर मैं नहाने निकल जाती थी। कातिक से लेकर चैत तक हुगली का पानी खूब साफ

रहता है, हरा और निर्मल। जीभ निकाले काली मइया और जटाओं वाली आनन्द भैरवी···रेलवे लाइन से जरा हटकर पीपल के नीचे धूप मे बैठकर अपने बदन को तेल मे चुपडा करती थी, कमर से पतला गमछा लिपटा रहता था। सारे अग दिखाई पडते थे। इक्के-दुक्के अधेड़ और युवक करीब मे खडे होकर रेलिंग से लगे-लगे इस भैरवी की तरफ देख लेते थे। मुझसे बातें करती थी। वह बंगला बोलती थी, मैं हिन्दी। बीच-बीच में चीख पड़ती—मां काली, रोक्खे कोरो···सावली सूरत, गोल चेहरा, छोटी-छोटी आखें, सामनेवाले दो दात बाहर निकले हुए थे। भाल पर सिन्दूर का बड़ा टीका। एक रोज एकान्त पाकर बोली, "तुम्हारी तो अभी चढ़ती उम्र है, आनन्द के समुद्र मे गोते लगाने की उम्र। मा काली के चरणो की छाया मे एक से एक रत्न चमक रहे है। बेटा, तुम उनसे खेलो ··रत्नों की चमक से तुम्हारे दो काम होंगे, शोभा भी बढ़ेगी और तरावट भी पहुचेगी। मेरे साथ घर चलो, वहां मां काली की पुरानी प्रतिमा है। हमारी अपनी मा! एक बार तुम चलो तो, दर्शन तो करो एक बार!···" मैं गई जरूर भैरवी के पीछे-पीछे लेकिन चुड़ैल ने बेहद परेशान किया। बासा पर बक्स में गहने कितने है, रकम कितनी है, रिश्ते के कै ठो मर्द यहां कलकत्ते मे रहते है, मा काली के उसके अपने भक्तो से रात को मैं किस तरह और कब-कब मिला करूं, भक्तो से मिलना अस्वीकार कर देने पर मां मेरा कितना अहित कर सकती है···आदि-आदि बीसियो बातें भैरवी ने समझाने की कोशिश की और दो घंटे तक मेरे माथे का गूदा चाटती रही! डर के मारे भैरवी के हाथ का न कुछ खाया, न पिया। मूर्ति मामूली थी और मकान भी मामूली था। एक कमरे के अन्दर चटाइयों से घेरकर मां की कुटिया तैयार की गई थी। मुझे उस वक्त दिन के एक बजे भक्त या रत्न तो न दिखाई दिए, हा, डाकिनी-शाकिनी कोटि की चार-छै औरतें अवश्य झांक गई। गाठ में दो-ढाई रुपये थे, फूल और माला के नाम पर भैरवी ने ले लिये···चलते वक्त जरा-सा प्रसाद और यह फोटो मिला। पीछे पता चला, वह तो रंडियों का

मुहल्ला था। ठेठ सोनागाछी।

पिछले दस-बारह वर्ष के अपने भी कई फोटो थे। शर्मा जी के दो-तीन फोटो और थे। तीन-चार फोटो सरदारों के थे। पूरी डील और भरे चेहरेवाले दो फोटो एक अलग कवर मे नजर आए""इतने में घिसा हुआ एक पुराना फोटो सामने आ पड़ा : *बी० ब्रह्मचारी : पीठ पर नाम* लिखा था।

बी० ब्रह्मचारी : डरावनी आंखें, मोटी लम्बी नाक, चौड़ी पेशानी। गया जिले मे पुश्तैनी जमीन से किसान बे-दखल किए जाने लगे तो उन्होने सामूहिक सत्याग्रह का रास्ता अपनाया। यह आन्दोलन जमीन्दारो के खिलाफ तो था ही, सरकार के भी अनुकूल नही था। शासक बातें तो किसानों के हित की करते थे, अमल मे लेकिन जमीदारो को नब्बे प्रतिशत समर्थन हासिल था। दमन की दुहरी चक्की में पिसते-पिसते धीरज का बाध टूटा तो देहात का एक युवक कानून का रास्ता छोडकर हमेशा के लिए फरार हो गया और डाके डालने लगा"'गया, आरा और डाल्टनगंज के जिलो के अन्दर जहा कही डकैती होती थी, बी० ब्रह्मचारी का *नाम उस सिलसिले मे जरूर लिया जाता। दस वर्ष पहले यह कैसा भोला-*भाला युवक था! स्वामी सहजानंद वाली किसान रैली मे शामिल होने के लिए टेकारी से आया, पचीस-तीस किसान साथ थे। बाकी लोग तो लौट गए, ब्रह्मचारी लेकिन किसी काम से रुक गया था। शर्मा जी के छोटे भाई से जान-पहचान थी। जेल मे वे साथ रहे थे। हमारे साथ वह चार ही रोज रहा"'गाता कितना अच्छा था। फोटो ठीक नही है, उचक्का जैसा लगता है। अपनी गीता के साथ वह पुरानी निशानी भी हमारे लिए छोड़ गया था। दो-तीन वर्ष पहले की बात होगी, एक डकैती मे ग्रामीणों से घिर गया और गुत्थमगुत्थे में जान गई। अखबारों मे खबर छपी तो हमें मालूम हुआ"'कैसा अनाड़ी था, सुअर की तरह भाले मे घायल होकर प्राण गंवाए।

लड़की की आंखें खुलीं तो हड़बड़ाकर वह उठ बैठी, नेपालिन को भी उठा दिया।

बुआ की तरफ देखकर नेपालिन बोली, "अन्दर आकर जाने कब से बैठी है, बताया भी नही।"

लड़की बाहर की ओर देखने लगी।

बुआ ने फोटो सहेजते हुए कहा, "देखती क्या हो, दिन डूबने ही वाला है।"

नेपालिन ने लड़की के कन्धे पर हाथ रखा। पूछा, "मीना, चाय पियोगी?"

मीना ने कहा, "चलो उधर, रसोई में बनवाते है।"

नेपालिन बुआ की ओर देखती रही। बुआ बोली, "तबीयत सुस्त है मेरी। खाना नही खाऊंगी, दूध पी लूगी।"

"अभी चाय तो पीयोगी?" मीना ने पूछ लिया।

बुआ ने माथा हिलाकर हामी भरी और ट्रंक बंद किया।

शाम को आश्रम का मैनेजर चम्पा से मिलने आया।

इधर-उधर की साधारण बातचीत के बाद चम्पा ने कहा, "इस तरह बैठाकर औरतो को कब तक खाना देते रहिएगा? इनसे कुछ न कुछ काम भी तो लीजिए!"

"औरतें आखिर औरतें ही ठहरी," मैनेजर बोला, "इनसे नाव की रस्सी तो नही खिचवाएगा कोई? आपने इस बारे में काफी-कुछ सोचा होगा, कुछ बतलाइए न!"

चम्पा ने कहा, "आप पढ़े-लिखे लोग जब चुप्पी साधे हुए हैं तो मुझ जैसी जाहिल औरत क्या सोचेगी? मर्द जो भी लीक खीच देते है, हमारे लिए वही वज्रलेख हो जाता है। हमारी अकल गौरैया की तरह फुदक सकती है, दूर की उड़ान नही भर सकती।"

"क्या कीजिएगा ऊंची उड़ान भर के?" मैनेजर ने चश्मा को फिर से एडजस्ट किया और कहने लगा, "हवाई दुर्घटनाएं बढ़ गई है। गरुड़

के पंख झुलस जाएंगे तो भगवान की क्या गति होगी ?"

चम्पा ने महसूस किया, मैनेजर बाबू मुंद्रिका प्रसाद विनोद के मूड में हैं। मीना का गाना सुनने या कुन्ती से गप्पें उड़ाने आए होंगे। मन की सुस्ती हो तो आदमी सोचना भी नहीं पसन्द करता।

प्रसंग बदलकर मैनेजर ने पूछा, "शर्मा जी कब तक आएंगे ?"

"दस बारह रोज लग जाएंगे।" चम्पा बोली। कुछ रुककर कहा, "नेपालिन का जी उचटा-उचटा-सा रहता है, उसके लिए जल्दी कोई प्रबंध करना चाहिए।"

"दिल्ली जाना पसन्द करेगी ?"

"क्यों नहीं पसन्द करेगी, रिश्ता अच्छा होना चाहिए।"

"ठेकेदार है, अच्छी तरह रखेगा।"

"रह लेगी।"

"चार रोज के बाद भाग तो नहीं आएगी ?"

"मार-पीट करेगा तभी भागेगी। औरतें सहारा पा जाती हैं तो उसे आसानी से छोड़ना नहीं चाहती हैं।"

"मीना क्यों भाग आती है बार-बार ?"

"उसे इसके लिए तैयार किया गया होगा···।"

"लेकिन आश्रम की बदनामी होती है, अधिकारियों को बार-बार खेद प्रकट करना पड़ता है।"

चम्पा चुप हो गई। नाटे कद की सुडौल देह, गेहुंआं सूरत और चांद-सा मुखड़ा···कमलपत्री आंखें, नुकीली नाक, पतले होंठ, साचे में ढले हुए गाल···माथे पर मांग के करीब दस-बीस बाल सफेद पड़ चुके थे। मुंह खोलती थी तो छोटे-छोटे मोतिया दात जगमगा उठते थे। उम्र पैंतीस से ज्यादा नहीं होगी।

कुछ सोचकर बोली, "कोई समझदार और सुन्दर नौजवान मीना को मिल जाता तो भागने की नौबत शायद ही आती !"

मैनेजर ने रसोइया को पान के लिए आवाज़ दी और सिर के अधपके

वालों पर हाथ फेरता हुआ कहने लगा, "समझदार और सुन्दर नौजवान कारखाने में नहीं ढलते हैं देवी जी ! समाज जिनको वापस लेने के लिए तैयार नहीं होता उन लडकियों के लिए दुनिया गेंद का मैदान है, सौ ठोकरों के बाद भी निश्चय नहीं की गोल पर पहुंच ही जाएगी ! हमारी तो कोशिश है कि वे सही ठिकाने पा जाएं, किसी न किसी सहारे पर टिक जाएं···आश्रम हमेशा घाटे में रहता है, दस-बीस सज्जनों की मेहरबानी है और दान मिल जाते है वर्ना दम घुट गया होता संस्था का।"

चम्पा के होंठ वन्द थे, खिड़की से आसमान की ओर देखती रही। मन ही मन उस धूर्त व्यक्ति को जवाब देने लगी : संस्था का दम क्या घुटता ? दम हो भी तो आखिर ? हां, तुम्हारा और रायसाहब का और महाशय मन्नूलाल का और बैजनाथ शर्मा का दम जरूर घुट जाता। आश्रम के दरवाजे सदा के लिए बन्द हो जाते। कुन्ती और चम्पा जैसी औरतें सड़क के किनारे फुटपाथ पर बैठकर पकौड़े छानती, बड़े घरों में महाराजिन या आया का काम करती, अपनी पसन्द के मुताबिक किसी चपरासी या ड्राइवर या पुलिस वाले या किरानी के साथ रह जाती···। तुम्हारे जैसे दलालों की जूतिया चूमने की अपेक्षा फिर भी वह जीवन कही बेहतर होता, कहीं ताजा ! ···

रसोइया पान दे गया। मैनेजर ने कोट की पाकिट से जर्दा की शीशी निकाली। कमरे की दीवारों पर गौर किया, तीन कलेंडर टंगे थे। नया एक ही था, साहित्य सौरभ ग्रन्थागार वाला। बाग में हरी घास पर पेट के बल आधी लेटी हुई तरुणी गुलाब की पंखुड़ियां गिन रही थी, पैरों के नजदीक छोटा-सा एक खूबसूरत कुत्ता हवाई चप्पल से खेल रहा था··· अमलतास और गुलमुहर के पेडों की कतारें दूर तक जाकर क्षितिज में खो गई थी। पुराने कलेंडर अर्धनारीश्वर और राधा-कृष्ण वाले थे। कलेण्डरों के अलावा खूंटियों पर कपड़े टंगे थे। खूब साफ और बड़ा आईना लटक रहा था।

उठकर मैनेजर आईने के सामने खड़ा हुआ, अपना चेहरा देखने

लगा। बाल गंगा-जमनी हो रहे थे, चाद गंजी थी। कानों की कगारो पर चार-चार बाल थे, वे भी पक रहे थे। उम्र पचास-साठ के दर्म्यान की होगी, स्वास्थ्य अच्छा था।

उधर से हार्मोनियम की आवाज़ आने लगी। मैनेजर चम्पा की ओर मुखातिब हुआ, बोला, "अभी तो इजाजत दें !"

चम्पा ने कहा, "मीना इधर अच्छा गाने लगी है, सुना है ?"

मैनेजर हसने लगा, "फिल्मी गीत अच्छा गाती है।"

"नही, मैं तो भजन सुनती हू उससे।" चम्पा बोली।

मैनेजर ने आंख दबाकर कहा, "शर्मा को नही सुनवाया है भजन ?"

चम्पा गभीर हो गई, आहिस्ते से बुदबुदाई, "कई बातों मे आपकी और शर्मा जी की रुचि मिलती है।"

मैनेजर मुस्कुराता हुआ कमरे से बाहर निकला।

रात का खाना सचमुच ही चम्पा ने नहीं खाया। थोडा-सा दूध पीकर लेट गई। दिन मे सोई नही थी, जल्दी ही पलके भिप गई।

नेपालिन को लगा कि बुआ सारी रात अच्छी तरह सोएगी, बीच-बीच मे न तो उसे उठना ही पडेगा और न बकवास ही सुननी पड़ेगी। वह खुद दिन मे दो घण्टे सो चुकी थी। रात का खाना खाकर उसने बुआ की मशहरी तान दी और स्विच आफ करके मीना से बातें करने चली गई।

दो घटे तक नीद का गाढापन बना रहा फिर वह पतली हो गई क्योंकि साथ वाले कमरे से मीना के ठहाकों की आवाज आई थी। आखें मूदे रहने पर भी अब चम्पा उस तरह सो नही सकी और मन विगत जीवन की गलियों मे भटकने लगा :

लाड़-प्यार मे पला हुआ बचपन। मामूली पढ़ाई-लिखाई। शादी और शादी के दो साल बाद पति का देहान्त। कभी मा और सास के साथ रहना, कभी देवर और देवरानी के साथ। तरुणाई के शुरू मे जीजा ने छू दिया था। पहले दिल को, फिर देह को।···बाद मे तीन साल का बच्चा छोड़-

कर जीजी का चेचक की वलि चढ़ना। जीजा और उनकी बूढ़ी मां—मेरी सास और मां ने जीजा का अनुरोध मान लिया।

बच्चे की देख-भाल के लिए मैं जीजा के साथ रहने लगी हूं···

मैं जीजा जी को मौके-बेमौके छेड़ देती हूं···

जीजा हंस पड़ते है लेकिन बढ़ावा नही देते है।

ड्यूटी के बाद ओवरटाइम खटके वह वापस आते हैं। नाश्ता और चाय के बाद लेट जाते हैं। मैं उनकी पीठ और कमर और जांघ चांपती हूं। मेरे हाथ कमर और जांघ के बीच ही लौट आते है बार-बार, जीजा लेकिन मेरा हाथ खीचकर बार-बार अपनी पीठ की तरफ कर लेते हैं···।

जाने उन्हें क्या अनुभव होता है कि फुर्ती से उठ बैठते है।

इशारे से पानी मागते हैं पीने के लिए। लाकर पानी का गिलास थमाती हूं, चार-छै घूट लेकर जीजा मेरी आंखों मे देखते हैं।

मैं नजरें झुका लेती हूं, लाज की हल्की लाली शायद गालों पर उभर आई हो!

"चम्पा!"

"जी!"

"एक बार इन बांहों के अन्दर लेकर मैंने तुम्हे चूम लिया था, याद है?"

मैं कुछ नही बोलती हूं। जीजा की ओर देख भी नही रही हूं।

"नही याद है?"

मैं माथा हिलाकर स्वीकार का इंगित देती हूं।

वह पानी पीकर गिलास पलंग की पाटी पर रखते है, कहते हैं, "चार-पाच वर्ष हो गए न? तुम्हारी शादी नही हुई थी और बातें करते-करते अक्सर मेरे हाथ बहकने लगते थे···तुम्हारी आखों में प्रतिरोध की चिनगारियां छिटक उठती और मैं सकपकाकर हाथ हटा लेता था! याद है चम्पा?"

"जी, सब याद है।"

"लेकिन अब स्थिति बदल गई है !"

"मैं समझी नही जीजा जी !"

वह गम्भीर हो गए है, मैं उनकी ओर देख रही हूं।

"बतलाइए न !"

"कोई खास बात तो है नही, चम्पा !"

"आपके लिए न भी हो, मेरे लिए तो होगी।"

"तो सुनो···

"आलोक कहां है ?"

"बाहर पडोस मे खेल रहा होगा···।"

"और मा ?"

"चौके मे। आग सेंक रही है।"

"मा ने शादी के लिए कई बार कहा है···

"इस बारे मे तुम्हारी राय जानना चाहता हू···"

मेरी छाती धड़कने लगी है। आशा-मिश्रित कौतूहल मेरी सांसों को भारी बना रहा है,"जीजा, क्या इस धुली माग में फिर से सिन्दूर डालेंगे !"

"अगर मा का डर न होता तो निश्चय ही मैं तुमसे शादी कर लेता। मा को मैं ईश्वर से भी अधिक मानता हूं चम्पा, मां की रुचि और अनुकूलता पर मैंने अपनी पसन्द को कभी नही लादा···"

मैं चुप हूं। आशा गायब हो चुकी है, कौतूहल शेष है, नाखून से नाखून खरोंच रही हू। जीजा जी दीवाल से पीठ टिकाकर बैठ गए है और लगातार मेरे चेहरे की ओर देख रहे है, मैं लेकिन आधी-तिर्छी नजर से ही उनकी मुखमुद्रा बीच-बीच में भाप लेती हू···"ऐसी क्या ऊटपटाग बात मैंने कर दी ! अच्छे-भले तो लेटे पड़े थे, जरा-देर और चाप देती तो बदन हल्का हो जाता···"

"तुम मेरा बदन चापती हो, रग-रग की मालिश हो जाती है चम्पा ! बड़ा ही सुख मिलता है। काश, मैं तुम्हारी मांग मे फिर से सिन्दूर भर सकता !"

"अब समझी ! आपको अपने पर भरोसा नही है जीजा जी ? चापते समय मेरे हाथ बहक जाते है ?···अच्छा, अच्छा ! मैं आपके मन की शान्ति नही छीनूगी जीजा जी, परेशान नही करूगी आपको ! अभी और कै वर्ष जिएगी आपकी मां ? बाद में पत्नी के तौर पर मुझे स्वीकार कीजिएगा न ?

" नही ? स्वर्ग में तब भी बुढ़िया का दिल दुखेगा ?

" माफ कीजिए जीजा जी, आप पहले दर्जे के डरपोक है ! कायर है ! शहद मिलाकर इस ईमान को चाट जाइए ! "

"चम्पा, मैं तुम्हे फुसलाकर खाई के अन्दर ढकेल दू ? जवानी की तुम्हारी इस कसमसाहट को बढ़ावा दू ? मैं भी विधुर हूं, तुम्ही विधवा नहीं हो चम्पा ! अपने पर अंकुश दो, काबू मे रखो अपने को ! "

"जी, महात्मा जी ! चार वर्ष पहले गर्मी की उस दुपहरिया में अपना यह अंकुश कहा भूल आए थे आप ? मैं क्वारी थी, मुझे पता भी नही था कि वासना का स्वाद क्या होता है !···"

जीजा पलंग से उतरकर मेरे पैर पकड लेते है ।

"क्षमा करो चम्पा, मैं तुम्हारे लिए कुछ नही कर सकूगा ! "

मैं पैर छुड़ाकर दो कदम पीछे हट जाती हू···कायर कही के !··· उस व्यक्ति के प्रति मेरे अन्दर घृणा उबल पड़ती है । वही कोने में थूक-कर बाहर निकल जाती हूं···।

अगले ही रोज मा के पास चली आती हूं ।

दो महीने बाद सिलीगुड़ी ।

एक खटिक नौजवान मुझे भगा लाया है ।

(आम का बाग···आधा हिस्सा चाचा का था । हमारा हिस्सा अपने नौकर अगोरते थे । चाचा ने अपना हिस्सा खटिकों को बेच दिया था, टिकोरे थे तभी । वैशाख की दुपहरी परिवार के लड़के-लडकिया वही बाग की तरावट मे गुजारते थे । खटिको मे से एक नौजवान अच्छी डीलडौल का और बेहद खूबसूरत था । ज़ालिम बासुरी कितनी बढ़िया बजाता था ।

एक रोज शैतान ने काले-काले जामुन क्या खिला दिए, मुझे खरीद ही लिया ! हम मौका निकालकर अकेले में मिलने लगे···।

(मैमनसिंह, ढाका, राजशाही···बिहार के हज़ारों मुसलमान इधर आकर आबाद हो गए हैं। खेती-बाड़ी, होटल, पुलिस, मिलिटरी, हाट-बाज़ार, प्रेस, अदालत-कचहरी और सरकारी सेक्रेटारियट···पूर्वी पाकिस्तान में कहां नहीं बिहार की कच्ची उर्दू गूंजती है !)

सफदर ने होटल खोल लिया है। दो नौकर रख लिए हैं। रहने के लिए अलग मकान मिल गया है। आमदनी बढ़ती गई तो मेरे गहने भी बढ़ते गए।···सफदर की मा आई है और मैं भी तो मां हो गई हूं ! बच्ची का नाम सफदर ने सकीना रखा है मैं लेकिन उसे शकुन्तला कहती हूं।

रकम की गर्मी और दोस्तों की सोहबत···सफदर खूब ढालने लगा है। मा मना करती है तो उसे गालियां देता है···गिन-गिनकर नोटों की गड्डियां बनाना और झूमना और गुनगुनाना—

'रोते भी रहे, हंसते भी रहे,
हम तुझसे मुहब्बत करके सनम
रोते भी रहे, हंसते भी रहे !
इक दिल के टुकड़े हज़ार हुए
कोई यहां गिरा, कोई वहां गिरा···'

बच्ची के बाद बच्चा पैदा हुआ है। सफदर ने नाम रखा रुस्तम, मैं लेकिन उसे विजय ही कहूंगी !—नशे में धुत्त होकर एक बजे रात को घर लौटता है और पीटने लगता है मुझे। कभी-कभी तो बेदम कर डालता है···हे भगवान, कौन-सा पाप किया था पहले जनम में कि इस राक्षस के साथ भाग आने की कुबुद्धि मन में आई !

चौथे साल सफदर का नाना मरता है। थाना इस्लामपुर जिला पटना से तार पहुंचता है। हिन्दुस्तान आने की वीसा मिल जाती है, बच्चों को लेकर महीना-भर के लिए हम ढाका छोड़ते हैं।

कटिहार जंक्शन में छै घंटे का वक्त मिलता है। सफदर एक दोस्त

से मिलने बाजार गया कि मेरे दिमाग में बंधन से छुटकारा पाने की लालसा कांप उठती है।

—बच्चों का क्या होगा ?

—उन्हें छोड़ दूंगी।

—छोड़ दोगी ?

—नहीं···हां !

—कैसा पत्थर का दिल पाया है ! छिः।

—मगर अबकी लौटकर जो पाकिस्तान गई तो सफदर फिर कभी लौटने नहीं देगा।

—पीट-पाटकर दुम्बा बना डालेगा ?

—बस, ज्यादा मत सोचो ! भाग चलो चम्पा···

—लेकिन बच्चों को छोड़कर एक मां के पैर उठेंगे ?

—जहन्नुम में जाओ !

—बच्चे···शकुन्तला और विजय !

—मेरी कोख जल नहीं गई है, बच्चे फिर हो जाएंगे···हिन्दुस्तान में रहूंगी तो कभी उस गांव की मिट्टी छू सकूंगी जहां जन्म हुआ था।

समय नहीं है। मैं जल्दी करती हूं।

सफदर की मां दोनों बच्चों को संभाले हुए है। मैं पाखाना जाती हूं और नहीं लौटती हूं।

तीसरे दिन शाम को हावड़ा, बिना टिकट आई हूं न ! जगह-जगह उतरती आई हूं···

जय काली माई !

भीख से पेट नहीं भरता है। मां, तुम्हारी लम्बी जीभ ने लोगों की दया-माया भी पी ली है न ?

—ओए, तू भीख क्यों मांगती है ?

—यह उम्र तेरी मांगने की नहीं है···

—तो क्या करूं सरदार जी ?

—खाना पकाएगी ?

हामी भरी और पीछे-पीछे आ गई सरदारों के। बालीगंज में बोण्डेल रोड से ज़रा हटकर एक पुराने मकान मे सरदारों का अड्डा। बाहर एक-न-एक टैक्सी खड़ी रहती है।

बहुत आराम से हूं। एक नही, तीन-तीन सरदार मुझपर कुर्बान है ! इस निगोडी देह को मानो भालू ने ही फूक मार दी है···स्वास्थ्य मे ऐसा निखार कभी नही आया था। पता नही, भाग्य मे क्या बदा है ! फूलकर मै भैंस तो नही हो जाऊंगी ?

जापानी रेशम की सलवार और कुर्त्ता, मखमल की ओढनी···चम्पा, तूने कडा भी पहन लिया है और कृपाण भी लटका ली है। अमृतसर की सरदारनी बन गई है, शाबास चम्पा !

—होटल चला रही है तू ?

—शराब और कबाब और···

—हा, सब-कुछ···

—तीन बंगाली लड़कियां भी रख ली है न ?

—तो क्या हुआ !

एक मद्रासी ऐंग्लो-इडियन छोकरा···।

एक नेपाली युवक···

उत्तर प्रदेश का एक अधेड···

क्लर्क, व्यापारी और शिक्षक—हुस्न की झील मे तीनो गोते खाने लगे। सरदार की ओर से हरी झण्डी का सिगनल मिला, तू आगे बढी चम्पा ! दो साल के अन्दर उनका काफी सत निचुड गया। नेपाली की खुखरी मद्रासी के गले पर खेल गई। शिक्षक ने व्यापारी को चकमा दिया और सरदार को नई छोकरी मिली। खुखरी वाला फरार होकर नेपाल भाग गया। मुकदमा चला तो शिक्षक को दो वर्ष की सज़ा हुई और तुझे छै महीने की···बंगाली छोकरियों में से दो को पुलिस ने अपनी तरफ न मिला लिया होता तो तू अदालत के कटघरे से बेदाग निकल आती चम्पा !

पन्द्रह-बीस हज़ार जमा हुए थे, सारी रकम लेकर सरदार चम्पत हो गया···
चल, यह भी अच्छा ही रहा !

जेल से रिहा होने पर मास्टर जी से मिलती हू ।

मास्टर जी मुझे शर्मा जी का पता देते है ।

हावड़ा में शर्मा जी का घी का कारोबार है । मैं उनसे सलकिया मे मिलती हूं ।

शर्मा जी जेल-गेट पर जाकर मास्टर जी से मिलने जाते है और मेरे बारे मे पूछताछ कर आते हैं । मैं शर्मा जी के साथ रहने लगी हू ।

(यह आठ साल पहले की बात है, अब तो घी का धधा शर्मा जी का भतीजा संभालता है । खुद वह आजकल कोई खास काम-काज नहीं करते हैं । बीच-बीच में ठेकेदारी के लिए दो-एक टेंडर जरूर भर देते है । टिप्पस भिड़ती है और काम बन जाता है ।)

लोगों को मेरा परिचय वह 'रिश्ते की एक बहन' के तौर पर दिया करते हैं । यों मुझसे उनकी उम्र दस-बारह वर्ष ही ज्यादा होगी और वह विधुर नहीं है । साथ रहते-रहते नेह-छोह हो ही जाता है, मै अपने प्रति शर्मा जी के अन्दर गाढी ममता पाती हूं । उन्हे प्राणेश्वर या जीवन-धन तो मैं शायद ही कभी कह सकू किन्तु मेरे आश्रयदाता और प्रतिपालक अवश्य है । मैं बहुत भटक चुकी हूं, अब विश्राम चाहती हू । तन-मन लगाकर शर्मा जी की सेवा मैं करती रहूंगी···

(साल-डेढ साल हम कलकत्ता और रहे । फिर बिहार रहने लगे । बिहार का शायद ही कोई जिला छूटा हो । पूर्णिया, सहरसा, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, मोतिहारी, छपरा, राची, हजारीबाग, जमशेदपुर, पटना··· कहां नहीं रहे है शर्मा जी ? नेपाल के बिराटनगर, जनकपुर, बीरगज भी उनकी प्रिय जगहों में से रहे है । पश्चिम मे काशी और प्रयाग, पूरब में कलकत्ता···अनाथ औरतों के सिलमिले मे शर्मा जी ने एक बार कहा था : पहले इस काम के पीछे मेरी कोई कमजोरी भी रही होगी, अब लेकिन मैं इस काम को 'अत्यन्त पवित्र एक राष्ट्रीय कर्त्तव्य' मानता हूं

चम्पा ! मेरे लिए यह एक ऐसा हावी है जिसके साथ सामाजिक दायित्व भी जुड़ा है···और कितनी तत्परता से शर्मा जी इस काम को करते आए है !)

—वो देखो, शर्मा की नई रखैल···
—अच्छी चिड़िया फांस लाया है पट्ठा···
—चाल तो देखो, रूपनगर की रानी लगती है···
—बच्चू की मौसी है, इलाज कराने आई है···
—हा भई, शर्मा खुद ही भारी डाक्टर है न !
—उसकी अपनी डिस्पेन्सरी है···
—पेटेण्ट दवाइयों के उसके पार्सल कहां-कहा नही जाते !
—लेकिन यह हिरनी किस जंगल की है ?
—पुट्ठे पर सील-मुहर होगी, देख के बतलाऊंगा···
—चल चल, यह मह और मसूर की दाल···
—इसे मैंने किसी फिलिम में देखा है··· ।
ये तो मर्दो के रिमार्क है ।

औरतें क्या कहती है मेरे बारे मे ?
—सोनागाछी से आई है···
—छूत की बीमारी है, इससे अलग ही रहो दीदी ।
—देखना, यह रांड कही तुम्हारी मुन्नी को न फुसला ले !
—राख है कि चित्ती कौडी है···
—डायन कितनों की कलेजियां चबा गई होगी···
—कैसी बहन है कि भाई को ही खसम बना रखा है···
—ऐसा न कहो, बड़ी देर तक पूजा-पाठ करती है ।
—पाठ दिन को, पूजा रात को ।

(शर्मा जी की घरवाली तक मेरी शिकायत पहुंची। बडे घराने की उस चतुर महिला ने ननद की मार्फत पति को कहलवाया : गांव-घर से दूर दुनिया-भर की खाक छानते-छानते जीवन गुजर गया, देह की मशीन को आराम भी मिलना चाहिए और तेल-पानी···मुसीबत की मारी एक भली औरत छांह में आ गई है तो अब उससे दुराव रखना ठीक नहीं, साथ रहती है तो रहे···लेकिन विधवा है, मांग मे सिंदूर न डलवा ले आप से !)

तो, सिंदूर क्या मैं खुद ही नहीं अपनी माग मे भर ले सकूगी ?

विधवा तो मैं कभी रही नही ! पति के बाद मन ही मन जीजा के प्रति समर्पित हो गई। जीजा ने जवाब दे दिया तो सफदर पर फिदा हुई, उसने चम्पा को कुलसुम बना लिया···कानो मे छल्ले डलवा दिए चांदी के···छंदों के निशान नहीं है इन कानों मे ?

कुलसुम के बाद ? सतवत कौर ? हा, सतवंत कौर। सरदारो ने मुझे यही नाम दिया था।···सतवत कौर ने दम तोड़े तो चम्पा फिर से जी गई···शर्मा जी ने पहली बार पूछा तो चट् से मैंने *अपना नाम* बतलाया, चम्पा। अब मैं जिन्दगी-भर 'चम्पा' ही रहूंगी या फिर यह नाम बदलना पड़ेगा ?

हां, मैं विधवा नही हूं। सपने में भी अपने को मैं विधवा नहीं मानती। शर्मा जी पति नही है मेरे, उनका आसरा है मेरा पति। बच्चे नही होंगे, मैने आपरेशन करवा लिया है न ? शर्मा जी मुस्कराकर कभी-कभी कह देते है : चम्पा, तुमने प्रकृति के नियमो का उल्लंघन किया है !···कुदरत के अनुशासन में नश्तर मारा है···तभी तो बीमार रहती हो···मैं गलत कहता हूं चम्पा ?

—आप भला गलत कहेंगे शर्मा जी ? नही शर्मा जी, नहीं ! आप बिलकुल ठीक कहते है···मगर मैं भी गलत नही कहती शर्मा जी, आपरेशन करवा लिया, अच्छा किया मैंने। नही ? अच्छा नही किया ?

मैं हंसती हूं, शर्मा जी गम्भीर हो जाते है।

शर्मा जी हंसते है, मैं गम्भीर हो जाती हूं।

(अब रत्ती-भर भी अभिलाषा मां बनने की रह नही गई है मेरे अन्दर। क्या होगा मां बनकर ? बालीगंज मे थी तो एक बच्चा हुआ था, आठ महीने जिया···अच्छा हुआ कि नही रहा। बच्ची नहीं हूं कि फिर वैसी गलती करूंगी। उस ऐंग्लो-इंडियन मद्रासी छोकरे ने एक बार कहा था. जिन्दगी का कोई सिलसिला जम जाए तभी बच्चा पैदा करो, बच्चे को किस्मत के भरोसे छोड़ दोगी तो वह छछूंदर या लोमड़ी की तरह मारा-मारा फिरेगा और फिर गालियां तो डार्लिंग तुम्हीं सुनोगी न ?)

शर्मा जी जिम्मेवार आदमी है। मेरे बच्चे को या बच्ची को पाल-पोसकर और पढ़ा-लिखाकर वह आदमी जरूर बना देते···मगर उसके लिए सामाजिक सम्मान कहां से खरीद लाते शर्मा जी ?

शर्मा जी मुझे उदास देखते है। सोचते है, बच्चा होता तो उसमें उलझी रहती।

मैं उन्हें गंभीर पाती हूं। सोचती हूं, इनकी यह छिछली भावुकता इन्हे ही मुबारक हो ! मैं खिलखिला उठती हूं, कहती हूं—तबीयत बहलाने के लिए गुड्डा ला देंगे प्लास्टिक का ?

वह उठकर चल देते है। रंज हो गए ?

—बड़ी निठुर हो तुम चम्पा !

—निठुर ? क्या किया है मैंने आपका ?

—मेरे लिए नही, खुद अपने लिए निठुर हो तुम !

—आपके सिर पर अखरोट फोड़ूं तो कहना···

—अपना सिर लहूलुहान किए बैठी रहेगी तो मुझसे देखा जाएगा?

—लेकिन, प्लास्टिक का गुड्डा आप जरूर ले आइए ! चाबी से चल-फिर सके, हंसे-बोले और आप बाहर से आए तो दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करे !

शर्मा जी बाहर निकल जाते है।

तुम शर्मा जी का मखौल उड़ाती हो चम्पा? यह अच्छा नहीं है चम्पा! बुजुर्ग की मूछों के बाल दुधमुहे बच्चों की खातिर खेल में आ सकते है, तुम उन्हे मत नोचो चम्पा! यह लत महंगी पड़ेगी रानी जी··· तुम्हारी जैसी तो लड़किया है शर्मा जी के—एक-एक की शादी मे पन्द्रह-पन्द्रह हजार खर्च हुए है, तुमने समझ क्या रखा है? एक दामाद डाक्टर है, एक इजीनियर—

और लड़कियां दोनो क्या है?

दर्जा सात और दर्जा छै तक पढ़ी हुई है···मीना-पिरोना और स्वेटर बुनना जानती है। आड़ी-तिर्छी पंक्तियों मे और लंगड़ी भाषा मे अपने-अपने पति को पत्र लिखती है···

(मैं भी अपने पति को अशुद्ध भाषा मे पत्र लिखा करती थी, पंक्ति टेढी और अक्षर बदसूरत···जो दस हजार देकर खरीदा गया था मेरे लिए उस नौजवान को इस फूहड़पन पर बडी खीझ आती थी। वह खुद पढाकू लड़का था, परीक्षाओं में हमेशा प्रथम श्रेणी पाता था। चाची से मेरे बारे मे एक बार उसने कहा था: यह मेरे क्या काम आएगी! मैं यूनिवर्सिटी मे प्रोफेसर रहूगा। दूसरे प्रोफेसर साथी और उनकी शिक्षित पत्नियां हमसे मिलने आएंगे, यह ठीक से बातचीत भी तो नहीं कर पाएगी! कम से कम मैट्रिक तक भी पास करवा दिया होता···अपनी लड़की चाहे गोबर हो, लड़का लेकिन हीरा चाहिए!···)

नीद आने लगी तो मीना ने नेपालिन से कहा, "जा, अब तू भी सो!"

नेपालिन भी कई बार जंभाइया ले चुकी थी, बोली, "खूब हसाती है न! तेरे पास सारी रात बैठी-पड़ी रहू तो भी उठने का जी नही करेगा। तुझे जोरो की नीद आ रही है न?"

आफिस की बडी घडी ने दो बजाए···टन, टन!

"हां, जा, अब सो जा! सवेरे मुझे उठा देना आकर!"

"लेकिन मेरी नीद कैसे टूटेगी मीना?"

"बुआ स्टोव जलाएगी न।"

"हां, वो तो तड़के ही जग जाएगी। आठ ही बजे सो गई थी…"

लेकिन नेपालिन ने नजदीक आकर देखा, बिजली जल रही है। बरामदे की ओर रोशनदान था, तिर्छे शीशे से होकर आधी रोशनी तो साफ आ रही थी और आधी छनी हुई।

आहिस्ता से किवाड़े ठेलकर वह अन्दर आ गई।

किवाड़ो को भिडाकर सांकल चढ़ाने लगी कि बुआ ने कहा, "रहने दो, बाहर जाऊंगी। तुम सो जाओ।"

फर्श पर गद्दा बिछा था, नेपालिन लेट गई। उसे आश्चर्य था कि बुआ अब तक जगी थी…पूरी नींद के बाद शायद अभी-अभी आंखें खुली होंगी!

नेपालिन को पांच मिनट बीतते न बीतते नींद आ गई।

चम्पा की तबीयत बिल्कुल बिखर चुकी थी। दिमाग भारी हो आया था। बिस्तरे से उठकर सुराही के पास आई, स्टेनलेस स्टील के उस नफीस गिलास मे लेकर पानी पिया और बाहर निकली।

फागुन की पूर्णिमा दो रोज बाद ही पड़ती थी। नीम के नीचे चित-कबरी चांदनी का अल्पना आंखों को बडा ही प्यारा लगा। इस दुतल्ले पर बरामदे चारों तरफ से घिरे हुए थे, रेलिंग काठ का था। बीच की आंगन वाली जगह ऊपर के असीम आकाश को नीचे अपनी चौकोर परिधि मे लेकर नीम के उस विशाल वृक्ष की महिमा और भी बढ़ा रही थी।

बुआ देर तक रेलिंग से लगी खड़ी रह गई। उसे उस समय बार-बार भुवन की याद आ रही थी…कम्पाउण्डर की बीवी, उम्मी की मां, तिलक-धारीदास, मुन्शी मनबोधलाल, और वह संजीदा छोकरा विभाकर याद आ रहे थे। बड़े बालों वाला वह खांसता हुआ चेहरा…महिम! कत्थई रंग के गन्दे दांतों वाले वह सज्जन…दिवाकर! बदसूरत कुतिया और दोनों पिल्ले। मुन्शी जी का भांजा, निगाहों के भद्दे इशारे…भोली-भाली भुवनेसरी!

कही दूर से होली के गीतों की मोटी और आवेगपूर्ण ध्वनि आ रही थी, सोई रात का सन्नाटा मृदग की थापों से टूक-टूक हो गया था···एक मोटा चूहा निचले तल्ले के एक कमरे से निकला और आगन को बीचो-बीच पार कर गया। बुआ ने आंखे मली, जंभाई लेकर चेहरे पर वही हाथ फेर लिया और कमरे के अन्दर आ गई। भुवन साथ-साथ अन्दर आई, वह बुआ के दिमाग पर जाने कब तक हावी रहेगी। बेचारी को सोने नही देगी क्या ?

चम्पा ने आहिस्ते से सादी कापी निकाली, पेन हाथ में लेकर कागज़ पर झुकी। वह भुवन को पत्र लिखेगी।

"प्यारी भुवन,
पता नही, तुम कहां हो—"

लेकिन पत्र का होगा क्या ? अचार-मुरब्बा तो नही बनेगा, न सब्ज़ी ही बनेगी ? तो फिर क्या होगा पत्र लिखकर ? भुवन तक कैसे पहुंचेगी चिट्ठी ? छोकरी का पता भी तो मालूम हो···चम्पा की कलम रुक गई थी, आगे नही बढ़ रही थी। वह अजीब पशोपेश मे पड़ गई। तकिये पर बायीं केहुनी और उसी हथेली पर गाल टिकाकर निगाहों को छत की कड़ियों मे उलझाया ही था कि कम्पाउण्डर की बीवी मुस्कराकर सामने खड़ी हो गई।

—तुम जानती हो भुवन का पता ?

—मेरा पत्र भुवन को पहुंचा दोगी ?

—माथा हिला रही हो, तुम्हें भी भुवन का पता नही है ?

—उहुं, तुम उसका पता ज़रूर जानती हो !

—मैं पाव पड़ती हूं तुम्हारे, यह पत्र भुवन तक पहुंचा देना ! इतना-सा काम तो कर ही दो···मैं क्या करूंगी उसका पता-ठिकाना मालूम कर के !

चम्पा के दिमाग पर कम्पाउण्डर की बीवी जमी रही। अब वह उस तरह मुस्करा नहीं रही थी, चेहरा संजीदगी मे डूब चुका था और आखें

झुकी थी।

—तुम भुवन को मेरा पत्र जरूर पहुंचा दोगी!

—यह पत्र उसे बिना पहुंचाए तुम से रहा जाएगा?

—मैं किसीसे नहीं बतलाऊंगी···मुस्करा रही हो, तुम्हारे होंठ हिल रहे हैं!

—तो, अब तुम भुवन तक मेरा पत्र पहुंचा ही दोगी।

—मैं पूरा लिख तो लूं···

"प्यारी भुवन,

"पता नहीं, तुम कहां हो!

"इधर कई दिनों से बार-बार तुम्हारी याद आ रही है। दो महीने हो गए हैं, साठ दिन और साठ रातें। झूठ नहीं लिखूंगी कि तुम पर गुस्सा नहीं है मेरे अन्दर। क्रोध के साथ किन्तु ममता भी कम नहीं है भुवन, तुम्हारे प्रति अपने अन्दर मैं कभी कठोर और निठुर न हो पाई।

"शर्मा जी की और उनके मित्रों की निगाहों में तुम्हारी तरुणाई के लिए कैसी ललक छलका करती थी! अच्छा हुआ कि इसका आभास तुम्हें नहीं हुआ भुवन! लेकिन मुझे तो पहरा देना पड़ा था, शिकारियों की टपकती लारें मैं कैसे भूल जाऊंगी?

"मेरा मन मुझसे बार-बार कहता है कि हमारी मुलाकात होगी और ज़रूर होगी। धरती छोटी नहीं है भुवन, और समय असंभव को भी संभव बना डालता है! आज के बिछुड़े हुए कल नहीं तो परसों और परसों नहीं तो चार दिन बाद मिलते हैं। नहीं मिलते हैं?

"घबड़ाकर शादी न कर लेना भुवन, न किसी आश्रम में भर्ती होना। मुझे लगता है कि तुम समाज की इस सड़ांध से—इस कुम्भीपाक नरक से निकलकर नई दुनिया के समझदार लोगों के बीच पहुंच गई हो···वहां, जहां के नर-नारी मिल-जुलकर आगे बढ़ते हैं, जहां कोई किसीकी बेबसी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसीको चकमा नहीं देता, जहां पुरुष बल होगा तो स्त्री बुद्ध होगी, स्त्री शक्ति होगी तो पुरुष ज्ञान, भुवन तुम

निश्चय उसी संसार मे पहुंच गई हो !

"जी करता है, तुम्हे बेटी कहके पुकारूं और तुम अगले ही क्षण सामने आके खड़ी हो जाओ ! मुझे मां कहने में तुम शायद हिचक उठोगी भुवन ! नही, मैं उतनी बुरी नही हूं, बेटा। देखना, मैं भी इस नरक से बाहर निकलूगी···

"मैंने तुम्हे एक अच्छी साड़ी तक न दी ! टालती रही हमेशा, बहाने बनाती रही। लेकिन अब सोचती हूं, महगी साड़ियो का चस्का न लगाकर मैंने तुम्हारा भला ही किया···रेशम की साड़ियां और सोने के गहने जाने कितनी मुसीबतों के बीज अपने अन्दर छिपाए रहते है !

"उस दिन बाथरूम से तुम गायब हो गई, बिल्कुल ठीक किया तुमने भुवन ! आधा घण्टा बाद शर्मा जी तुम्हे साथ लेकर निकलने वाले थे न ? जिसने भी तुमको भागने की सुबुद्धि दी थी, उसे मैं सारा जीवन धन्यवाद देती रहूगी।

"तुम तो बेहद सीधी हो, बड़ी समझदार। मुझे क्षमा मिलनी चाहिए भुवन, सामने आ जाती, तो अवश्य ही मैं तुम्हारे पैर पकड़ लेती···।

चम्पा,

तुम्हारी वही बुआ"

पत्र लिखकर चम्पा ने कागज को चार तहों मे मोड़ लिया और संभालकर सिरहाने के नीचे रखा। स्विच आफ कर आई। माथा हल्का हो चुका था। कुछ देर में नीद आ गई।

१४

कम्पाउण्डर की बीवी मायके गई, अब तक लौटी नहीं थी।

चैत खत्म हो रहा था। धूप बर्दाश्त नही होती थी। पछिया के झोंके लोगा की गालियां सुनने लग गए थे। बुढ़िया बगालिन के हाते के

अन्दर छोटा-सा बाग था। केलों के पत्ते चहारदीवारी पर से बाहर लटके रहते थे मगर हवा के थपेड़ों ने बुरा हाल कर रखा था उनका, हरी झालरों के धनुष बन रहे थे और निगाहों को चिढ़ाते थे!

महिम की बीमारी का हाल सुनकर उसकी मां, बीवी, बच्चे, छोटा भाई आ पहुचे।

महिम की बीवी पढ़ी-लिखी नही, समझदार और मीठे स्वभाव की थी। उसने मामी का दिल जीत लिया। एक दिन मुस्कराकर बोली, "हम आपको भी देहात ले चलेंगे मामी, यहा अकेली रहकर क्या करेंगी आप? दो महीने बाद फिर इनके साथ ही वापस आ जाना···हमारे उधर आमों का मौसम अच्छा रहता है। कलकत्ता, बंबई, दिल्ली कहां नही जाते है तिरहुत के आम।"

उम्मी की मा का ननिहाल सीतामढ़ी के पास था, फैली-फैली आंखो से हुलास उंडेलती रही और कहा, "गई हूं उधर। दरभंगा, समस्तीपुर, सीतामढ़ी, रक्सौल, सब देखा है बहू!"

"अब हमारे साथ चलिएगा। आप पास रहेंगी तो इनका भी मन लगेगा। परदेश मे आपका ही तो सहारा था। बिल्कुल बच्चे का स्वभाव है मामी, इनको सभालना मुश्किल हो जाता है!"

"मै वैशाख मे चार रोज के लिए आ जाऊंगी बहू!"

"नही मामी, आप नही आएंगी!"

"कोई दुश्मनी है कि नही आऊगी!"

बाहर से उछलता-कूदता बच्चा आ गया। इशारे में अपनी मा से खाने के लिए कुछ मागने लगा।

आठ-नौ वर्ष के उस खूबसूरत बच्चे को मामी ने पास बुलाया, कधे पर हाथ रखकर कहा, "चल, मैं देती हूं।"

कमरे के अन्दर ले जाकर चार बिस्कुट और रामदाने के दो लड्डू दिए।

उम्मी की मां को आज अपने दोनों लड़कों की याद आ रही थी।

छोटा तो बार-बार दिमाग में आ रहा था। अब तो चौदह का हुआ, कितना बड़ा हो गया होगा···बुरी तरह मन कचोटता रहा···बड़े की याद आई···उम्मी की याद आई तो दिमाग ने झटका खाया।

इतने मे महिम की मां ने बुला लिया।

इधर वह ज्यादा खांसने लगा था। दिवाकर को और अशंक को शक हो रहा था टी॰ बी॰ का मगर एक्स-रे और मल-मूत्र-खून आदि की अलग-अलग जांच के आधार पर डाक्टर सेन ने अपने चैम्बर मे महिम के शरीर की आधा घण्टा तक परीक्षा-निरीक्षा की और टी॰ बी॰ की शंका को निर्मूल घोषित किया। प्रिस्क्रप्शन मे स्थान-परिवर्तन और पौष्टिक खुराक वाले निर्देश तो थे ही, दो-तीन प्रकार की दवाओ के बारे में भी लिखा था।

नेह-छोह, अनुनय-विनय, हठ और आंसू, अन्त मे अपनी जान दे देने की धमकी···मां ने बड़ी मुश्किल से महिम को गाव चलने के लिए राजी किया। उम्मी की मा अपना जोर अलग डालती रही। अकेले मे महिम को उसने बार-बार समझाया था। वस्तुतः उम्मी की मां ने अद्भुत त्याग और संयम का परिचय दिया। यदि वह जरा-सा भी प्रतिकूल इंगित देती तो महिम मां की बात नही मानता!

कल सुबह ५-४५ वाले स्टीमर से वे महिम को ले जाने वाले थे।

चार पर अलार्मवाली सुई लगाकर सभी सो गए। मा, बीवी, छोटा भाई और बच्चे गहरी नींद मे थे।

महिम ने आहिस्ते से मामी को जगाया।

दोनों फुसफुसाकर बातें करने लगे।

"अब भी वक्त है, तुम कहो तो न जाऊं!"

"ऐसा पागलपन न करना महिम!"

"और अगर मैं चार-छै महीने न लौट सकूं···"

"मैं ही पहुंचकर मिल आऊंगी।"

"लेकिन जाने ही क्यों देती हो ?"

"वहां जल्दी तंदुरुस्त हो जाग्रोगे महिम !"

"मन तो नही लगेगा मामी ! ..."

महिम का हाथ ग्रपने हाथ में लेकर मामी बोली, "अब इस मन का भी इलाज करना होगा !"

"मन का इलाज ?"—विस्मय मे डूबकर महिम ने जानना चाहा।

"हां, मन का इलाज !"—मामी बोली।

महिम उसके चेहरे की ग्रोर देख रहा था। दोनों तख्तपोश पर बरामदे में बैठे थे। बाहर ग्रांगन में चैत की चांदनी फैली थी। उजलेपन का भास्वर परिवेश बरामदे के अंधकार को धो रहा था। दीवारों की सफेदी तो उसे ग्रौर भी पतला कर रही थी। महिम के बालों के लच्छे मामी को साफ-साफ दीख रहे थे। सोच रही थी : कल इस वक्त काले बालों वाला यह सुन्दर मुखडा यहां से पचास कोस दूर होगा ग्रौर मैं इसी घर के ग्रन्दर सोई रहूंगी...!

महिम ने कहा, "तुम इतनी निर्मम हो मामी !"

"हा महिम।"—मामी गंभीर होकर बोली, "लेकिन, मेरी इस निर्ममता से कई प्राणों मे जीवन का रस छलकेगा ! कई सूखी नदियों में पानी के रेले ग्रा ग्राएगे ! देखा नही है, पिछले दस-बारह दिनों मे तुम्हारी मां के चेहरे की रंगत कितनी बदल गई है ! बहू की ग्रांखो में ठंढक नही देखी है ? बच्चों का उल्लास नही नजर ग्राया है ? प्रीति मे पगी हुई ग्रपने भाई की ग्रावाज नहीं ग्राई है कानों के ग्रन्दर ? बार-बार परोसन मांगकर तुम मा के हाथों का पकाया खाना खाते हो, ग्रच्छा नही लगता है ? कल सौंफ ग्रौर पुदीना के पत्ते पीसकर बहू ने शर्बत तैयार किया था ग्रौर तुम तीन गिलास पी गए थे। बारह साल की ग्रपनी बिटिया सध्या ने दो रंग के धागों से रूमाल के कोने मे तुम्हारा नाम काढ़ लिया था, वह सफेद रूमाल ग्रभी तुम्हारी पाकिट मे होगा। ग्रब दिन-रात तुम इन्हींके बीच रहोगे, तुम्हे प्रसन्न देखेंगे तो इनकी ममता धन्य-धन्य हो उठेगी। इनका

रोग्रां-रोग्रा मुझे आशीर्वाद देगा। ढेर-ढेर दुग्रा हासिल होगी तो शायद मेरे भी दिन लौटें···।"

महिम का हाथ नीचे पाकिट की ओर गया।

मामी ने कहा, "लौंग डालना चाहते हो मुंह के अन्दर? ठहरो, ला देती हूं!"

लौंग लाके दिया।

महिम चुप था। मामा भी चुप थी।

अन्दर बच्चे ने बच्ची की देह पर लात रख दी, नींद में ही संध्या ने एतराज किया—क्यों प्राण लेता है शेखर!

मामी अन्दर गई, दोनों को अलग-अलग कर आई।

बोली, "देखो महिम, बिना बाप के बच्चे बिलल्ला हो जाते हैं। बाप का अभाव मां भला कैसे पूरा करेगी?"

महिम ने पूछा, "और मां के बिना बच्चों का क्या हाल होता होगा?"

इस वक्त उम्मी की मा को यह सवाल अच्छा नहीं लगा। कुछ नहीं बोली।

महिम ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "देखो मामी, तुम्हारी राय मानकर मैं देहात लौट रहा हूं। स्वास्थ्य सुधर जाएगा, यह प्रलोभन नहीं है मेरे मन में। तुम्हारे आदेश को मैं सभी प्रलोभनों से ऊपर रखता हूं। डेढ-दो महीने के अन्दर ही पटना आ जाऊंगा। यों तुम्हारी तबीयत ऊबे तो तीन लाइन का एक पोस्टकार्ड डाल देना, चट से हाजिर हो जाऊंगा।"

उम्मी की मां ने कहा, "पोस्टकार्ड नहीं पहुंचेगा, मैं ही पहुंचूंगी महिम! तुम्हारी मा और वहू की ऐसी छाप मेरे दिल पर पड़ी है कि जिन्दगी-भर के लिए मैं उनकी अपनी हो गई।"

"मां भी तुम्हारी तारीफ करती है।"

"बहू नहीं करती है तारीफ?"

"हां, वह भी तारीफ करती है।"

"इन्हे मेरे बारे मे ज्यादा न बताना महिम !"

"नही बतलाऊगा···"

"नूनू का तिलक चढ़ेगा जेठ में। उम्मी मेरे लिए शायद किसीको भेजे—"

"जरूर चली जाना !"

"देखा जाएगा···"

"नही, ऐसे शुभ अवसर पर तमाम रिश्तेदार इकट्ठे होगे। लड़के की मां का गैरहाजिर रहना सभी को अखरेगा।"

"कोई आ ही जाएगा तो तुमसे पूछ लूंगी लिखकर।"

"इसमे पूछना क्या है !"

मामी गम्भीर हो गई। कंधे हिलाकर महिम ने कहा, "क्यों, चुप क्यों हो गई ?"

मामी आहिस्ते से बोली, "उम्मी के सामने कौन-सा मुंह लेकर जाऊंगी ? वह कभी मुझे क्षमा नही करेगी महिम ! मैं बाबूजी (पति) से उतना नही डरती हूं जितना इस छोकरी से···सुना है कि पिछले वर्ष बी० ए० पास किया है, अब तो मेरे प्रति घृणा और भी गहरी हो गई होगी···"

महिम ने आखो में आखें डालते हुए कहा, "कितना गलत सोचती हो मामी ! इस जमाने की पढ़ी-लिखी लड़कियां ईर्ष्या और घृणा का सिरका नही तैयार करती हैं, उनका तुम्हारे युग की उस सडाध से कोई वास्ता नही होता। उनके अन्दर छिछोरापन और थोथी भावुकता नही हुआ करती।···भूलों की संभावना के आतंक में वे मुर्दा होकर पडी नहीं रह जाती हैं, पिछली भूलो के पछतावे मे सुलग-सुलगकर राख भी नहीं होती हैं। आगे बढ़ना जानती हैं तो मौके पर पैंतरे बदलकर पीछे हटने का गुर भी उन्हें मालूम है। तुम क्यों डरती हो उम्मी से ? पुरानी कम-जोरिया तुम्हारा क्या बिगाड़ लेंगी ? हां, उनकी याद डायन बनकर अब भी तुम्हारी रगों का लहू चूसती रहेगी ! देखना, उम्मी तुम्हे यों नही

छोड़ देगी। वह जरूर ही तुम्हारी खोज में लगी होगी…"

मामी की आखों से आंसू बहने लगे।

महिम ने कुर्ते की छोर से उन्हें पोंछा लेकिन वे रुके नहीं, बहते ही रहे। मामी ने महिम का हाथ परे कर दिया, उठकर दरवाजे की ओर चली गई।

महिम ने सोचा, रोकर जी हल्का करेगी। कुछ देर बैठा रहा, फिर थकान मालूम हुई और विस्तरे पर जाकर लेट गया।

मामी भी बाहर से लौट आई। महिम से पूछा, "प्यास तो नहीं लगी है?"

"आधा गिलास दे दो"—महिम ने धीरे से कहा।

"क्या है बेटा?"—उधर से मा ने टोका, नींद टूट गई थी।

"प्यास लगी है मां!"

"कै बजे है?"

"एक।"

"आप भी पानी पिएंगी?"—उम्मी की मां ने महिम की मा से पूछा।

"नहीं"—वृद्ध स्वर खांसता रहा।

"मामी, मां से बातें करोगी या सोओगी अभी?"—महिम बोला।

मामी ने कहा, "सोऊंगी।"

१५

रजना ने कहा, "अच्छा किया, आ गई। अब आठ-दस रोज बाद ही वापस जाना। बनारस तो पहली बार देखा है न? यों तो हर शहर की अपनी एक खूबी हुआ करती है लेकिन इस काशी नगरी की एक नहीं अनेक विशेषताएं है निर्मला! बाबा विश्वनाथ और हिन्दू विश्वविद्यालय से लेकर सिल्क की साड़ियों और चादरो तक…"

"हां, मैं घूम-घूमकर देखूंगी," कम्पाउण्डर की बीवी बोली, "आपको तो फुर्सत नहीं मिलेगी, भुवन को साथ कर लूंगी।"

भुवन को इस प्रस्ताव से खुशी तो हुई मगर अगले ही क्षण वह गम्भीर हो गई। मुद्रा में परिवर्तन देखकर रंजना ने पूछा, "क्यों, अब चेहरा क्यों उतर गया इन्दिरा?"

"मैं सारा शहर कैसे दिखला सकूंगी भाभी? खुद ही देखना बाकी है तो इसको क्या बतलाऊंगी?"

"तुम्हारे भाई साहब होस्टल के किसी लड़के से कह देंगे, साथ रहेगा।"

निर्मला ने हंसकर कहा, "अब इन्दिरा ही कौन-सी लड़की रह गई! यह तो लड़कों के कान काटती है, सवेरे आज तैरने लगी तो गंगा में कितनी दूर निकल गई!"

"बैडमिण्टन भी अच्छा खेलने लगी है"—रंजना कहने लगी, "पड़ोस में साइन्स कालेज के प्रोफेसर रहते हैं, कुलकर्णी। मिसेज कुलकर्णी अपने छोटे भाई के साथ एक तरफ होती है, प्रोफेसर और इन्दिरा दूसरी तरफ··· कभी-कभी इन्दिरा और मिसेज कुलकर्णी का भाई ही आमने-सामने डट जाते हैं। वे तीनों इसकी तारीफ करते हैं।"

"स्वास्थ्य अच्छा हो गया है।"

"हां, वजन आठ पौंड बढ़ा है।"

"गर्मी की छुट्टियां कहां गुजारोगी भाभी?"

"हम तो कहीं नहीं जाएंगे।। सदानन्द डेढ़ महीने के लिए कलकत्ता जाएंगे, नेशनल लाइब्रेरी में कुछ किताबें देखनी हैं। वह लौट आएंगे तब दो-तीन रोज के लिए मैं पटना जाऊंगी, मामा से मिलने।"

कम्पाउण्डर की बीवी बच्चों की तरह खुशी के मारे तालियां पीटने लगी, कहा, "फिर तो इन्दिरा भी पटना पहुंच सकती है साथ-साथ!"

"नहीं, कोई जरूरत नहीं है," रंजना बोली, "इन्दिरा पटना क्या करने जाएगी?"

कम्पाउण्डर की बीवी ने याद दिलाया "बुआ का खत गया में तुम्हें भी तो दिखलाया था! मैं सोचती हूं, इन्दिरा एक बार बुआ से मिल लेती..."

रंजना ने तमककर कहा, "क्या होगा उस औरत से मिलकर ?"

कम्पाउण्डर की बीवी ने देखा, इन्दिरा नहीं है। बीच में ही उठकर चली गई थी। उधर बाहरवाले कमरे में राजीव और कुन्तल के साथ खेल रही थी। कम्पाउण्डर की बीवी आहिस्ते से बोली, "देखो भाभी, बुआ से मिलना इन्दिरा के लिए जरूरी नहीं है मगर इन्दिरा का मिलना बुआ के लिए जरूरी है। इन्दिरा जिस नरक से बाहर निकल आई है, बुआ अब तक उसी कुम्भीपाक में गोते खा रही है। वह इन्दिरा को सामने देखेगी तो अपने अन्दर दुगुना साहस महसूस करेगी भाभी, दलदल से बाहर निकलने का उसका संकल्प और भी तीव्र हो उठेगा अंधेरी रात में बीहड़ पांतर से होकर कभी निकली हो भाभी ? अंधेरे में भटकता मुसाफिर यदि दूर कहीं ज्योति का आभास भी पा जाता है तो उसके पैरों में बिजली की फुर्ती आ जाती है।"

रंजना ने कहा, "हमने तय कर लिया है, इन्दिरा बी० ए० करके ही पूरब की तरफ किसी शहर में पैर रखेगी।'

"तुम्हारे साथ जाएगी और लौट भी आएगी साथ।"

धागे का छोर होंठो में दबाकर रंजना कम्पाउण्डर की बीवी को देखती रही। वह मचलकर बोली, "हां कर दो न भाभी!"

रंजना बरामदे में तख्त पर बैठी थी। धुले कपड़ो का ढेर सामने था। राजीव के निकर में बटन टाकती हुई कहने लगी, "दो रोज़ के लिए पटना हो आएगी मेरे साथ, इसमें तो कोई हर्ज नहीं किन्तु मैं नहीं चाहूंगी कि इन्दिरा उन जगहों में जाए या उन व्यक्तियों से मिले जिनकी स्मृतियां पल-भर के लिए भी उसके दिल को दुखाएं...झुलसे हुए पौधे को ताजा पानी पिला-पिलाकर तुमने हरा कर लिया, दो दिन अब उसपर गरम पानी छिड़कोगी निर्मला ?"

निर्मला यानी कम्पाउण्डर की बीवी चुप रही। हाथों में कुन्तल का फ्राक लिए हुए थी, पीली अरगंडी पर लाल और काले छींटें अच्छे लग रहे थे। उलट-पलटकर दो-तीन बार देख लिया, उसे रखकर फिर दूसरा फ्राक उठाया। गुलाबी ग्राउंड और हरे-हरे पत्ते खूब खिल रहे थे।

"भाभी, कौन-से पात है ?" निर्मला ने पूछा, "छितवन के ?"

"अखरोट के पत्ते हैं।" रंजना बोली।

कुर्त्ते के लिए दो सफेद बटन खोजने लगी, नहीं मिली तो डिब्बी ही उलट ली···छोटी-बडी बटनें, पुराने ब्लेड, सेफ्टी पिन की नई किस्में, सुइयां, पेन्सिल के टुकड़े···नुमायश लग गई।

निर्मला ने छोटी सेफ्टी पिन उठा ली, बोली, "ले लू ?"

"वाह ! पूछकर ?" रंजना हंसने लगी।

निर्मला सोचती रही : मैं भी तो पढ़-लिख सकती थी। मैं भी तो भाभी की तरह लड़कियो के किसी इण्टर कालेज में प्रोफेसर हो सकती थी और···

बोली, "मा दो रोज से ज्यादा नही रुकेंगी, वही से रट लगाए हुए थी कि ग्रहण नहाकर अगले दिन लौटेंगी। भइया भी जल्दी वापस जाना चाहते है।"

"कल और परसों तो अवश्य रुक जाओ !"

"परसों क्यों ?"

"हमारी उस दिन पूरी छुट्टी है, खूब बातें करेंगे।"

"हां भाभी, शादी मे दो दिन के लिए तुम गई भी तो भीड़-भाड़ मे हम आधा घण्टा के लिए भी इत्मीनान से बैठ नही सके !"

"मैं तो थी फुर्सत मे, तुम पर बोझा था।"

"अब यहा होंगी बातें।"

"लेकिन तुम तो भागी जा रही हो निर्मला !"

निर्मला ने हंसकर कहा, "मैं कहां, मा भाग रही हैं। भारी जिद्दी हैं···।"

रंजना ने नज़र मारकर कमरे की ओर संकेत किया।

कमरे के अन्दर निर्मला की मां सो रही थी।

हथेली के इशारे से उसने निर्मला को और पास बुला लिया। धीमी आवाज़ में पूछा, "इन्दिरा की पीठ पर निशान कैसे है ?"

"बेंत की पिटाई के निशान है भाभी," निर्मला कहने लगी,"एक गुण्डे की करतूत थी यह। छै महीने इन्दिरा को भिखमंगों की टोली मे रहना पडा, वहां से धनबाद के गुण्डे इसको उचक लाए थे। गुण्डो ने चार-पाच महीने इन्दिरा को बेहद परेशान किया · फजीहत, पिटाई, बलात्कार, तनहाई, भूखों तड़पाना···क्या नही किया उन्होने ? आखिर उन्हींमे से एक का दिल पिघला तो इन्दिरा उस नरक से छुटकारा पा सकी। हजारीबाग में उस गुण्डे की प्रेमिका रहती थी, इन्दिरा को उसने छिपाकर वही रख दिया···"

"फिर क्या हुआ ?"रंजना ने सुई-डोरा सहेजा, आगे की वात जानना चाहती थी।

निर्मला बोली,'गुण्डे की प्रेमिका ने इन्दिरा को बड़े जतन से दो-तीन महीने रखा। वह इसको बहुत प्यार करती थी। एक बडे डाक्टर के परिवार मे काम करने वाली आया से उसका अच्छा परिचय था, इन्दिरा को डाक्टर की बीवी तक पहुंचने मे ज़रा भी दिक्कत नही हुई। वह गुण्डा और उसकी प्रेमिका, दोनो इस लड़की का भला चाहते थे···।"

"प्यार और सहानुभूति कब किसके हृदय मे छलकने लगेंगे, कहा नहीं जा सकता !" रंजना ने कहा, "तुम्ही क्या कम शैतान हो ? और, तुम्हारे अन्दर इन्दिरा के लिए कैसी करुणा छलकी थी !"

अपनी प्रशंसा अपने ही कानो के अन्दर आई तो कम्पाउण्डर की बीवी का मुखमंडल चमकने लगा, कहने लगी, "भाभी, मैंने क्या किया ? कुछ नही किया मैंने ! वह तो भगवान की मर्जी से हुआ सब-कुछ। मैं क्या जानती थी कि अगले क्षण क्या से क्या हो जाएगा ? मैं तो हाथ धोने निकली थी, बाथरूम मे इन्दिरा दिखाई पडी और उसने बतलाया : दीदी,

आज मेरा गला कटेगा। मैं तो हक्का-बक्का रह गई सुनकर, पल दो पल कुछ सूझा ही नही भाभी! मगर फौरन दिमाग में यह बात आ गई कि इन्दिरा को गायब कर दो···और मैंने इसे मकान-मालिक के गुदाम मे छिपा दिया!"

रंजना बोली, "इतना तो इन्दिरा ने भी बतलाया था। हां, तुम अब हजारीबाग की बात कहो···।"

"बतला ही तो रही थी," निर्मला ने कहा, "डाक्टर बंगाली था, चटर्जी या भटर्जी···!"

"भटर्जी नही, भट्टाचार्य!"

"हा, भट्टाचार्य ही था। लेकिन वे बड़े ही अच्छे लोग थे। इन्दिरा जब तक उनके बीच रही, खूब आराम से रही। बदली हुई तो डाक्टर साहब गया आ गए। इन्दिरा भी परिवार के साथ गया आ गई।"

"गया के बाद?"

"शर्मा जी। डाक्टर का खानदान मुजफ्फरपुर का है। कई पीढ़ियों से वे वहां जमे हुए है। डाक्टर के पिता नामी वकील थे, उनसे शर्मा जी की अच्छी जान-पहचान थी। डाक्टर से भी जब तब मिलते ही रहते थे। दो वर्ष के लिए डाक्टर विलायत जाने लगे, बीबी ने अपनी मां के पास बर्दवान जाने का निश्चय किया। इन्दिरा को शर्मा जी पटना ले आए कि बेटी-भतीजी बनाकर रखेंगे और शादी करवा देंगे।"

"डाक्टर इन्दिरा को नर्स की भी ट्रेनिंग दिलवा सकता था?"

"विलायत नही गया होता तो इसके लिए कोई न कोई रास्ता वह ज़रूर निकालता भाभी।"

अब मेज़ पर नाश्ता आने वाला था, चाय आनेवाली थी।

निर्मला, उसकी मा, इन्दिरा और बच्चे सैर के लिए निकलने वाले थे। सदानन्द और रंजना को किसी गोष्ठी में जाना था, एक उपन्यासकार के सम्मान में पचीस-पचास साहित्य-रसिक जुटने वाले थे।

१६

पिछले दो महीने के अन्दर चम्पा ने कई काम किए . आश्रम के टाइप-राइटर पर 'प्रतिदिन घण्टा-डेढ घण्टा अभ्यास किया और हिन्दी मे टाइप करना सीख लिया। मुन्शी मनबोधलाल को समझा-बुझाकर उसने छोटा-सा कमरा सस्ते भाड़े मे ठीक किया। बाहर एक तख्ती वही सड़क की ओर लटका दी —'गृह शिल्प कुटीर'। ड्राइवर सुमंगल को बुलवाया, नेपालिन का उससे परिचय करवा दिया, दोनों के सामने शादी का प्रस्ताव रखा। लेन-देन का कोई सवाल ही नही था, पसन्द की बात थी। दोनों अकेलेपन मे ऊबे थे और घर-गिरस्ती बसाकर साधारण सुख का जीवन बिताने की लालसा रखते थे। चम्पा का आदेश वरदान ही था दोनो के लिए। तय हो गया कि अगले महीने शादी हो जाएगी।

साढ़े पांच हज़ार की रकम चपा के नाम से सेविंग बैंक में जमा थी। चार हजार रुपये निकालकर उसने शर्मा जी वाले खाते मे डाल दिए। इसकी सूचना जब चंपा ने शर्मा को दी तो वह रंज हो गया।

ब्लडप्रेसर का दौरा आता था। गुस्सा चढ़ने पर आखे लाल हो जाती थीं, लगता था कि आसू छलकने ही वाले है। होंठ फड़क रहे थे।

बोला, "पागल हो गई हो चंपा! इससे तो बेहतर था, तुम मुझे चार जूते लगाती···"

चम्पा कुछ नही बोली, बेल का शर्बत तैयार कर रही थी।

उसकी चुप्पी ने शर्मा जी के क्रोध को और भड़का दिया, चिल्लाने लगे, "तुम मुझे कही का न रखोगी! तुम मुझे बे-आबरू कर दोगी! मेरी नाक मे कौड़ी किसीने नही बांधी थी, यह श्रेय भी तुम्ही को हासिल होगा चम्पा!"

शीशे के गिलास में शर्बत भरके अलग एक ओर रख लिया चम्पा ने। उसने सोचा, अभी दूगी तो गिलास पटक देंगे। गुस्सा ठण्ढा होगा, तब दूगी।

लेकिन शर्मा जी का प्रकोप तोड़फोड़ के लिए बेचैन था। वह उठे, इधर से शर्बत-भरा गिलास लिया और कमरे से बाहर जाकर मोरी में

उंडेल दिया। अन्दर आकर गिलास को चम्पा की ओर फेंका तो वह झन-झनाकर चूर-चूर हो गया।

काँच का एक पतला टुकड़ा उचटकर चम्पा के माथे मे लगा, दूसरा टुकड़ा दाहिनी केहुनी मे···

सिर का लहू बहकर नाक पर आने लगा।

अब भी कुछ नही बोली।

टिंचर का फाहा लेकर आईने के सामने खडी हुई।

शर्मा जी चुपचाप बरामदे मे कुर्सी पर बैठे रहे।

नेपालिन कही गई थी, वापस लौटी। चम्पा के सामने, आईने के नीचे लहू की बड़ी-बड़ी बूंदें देखकर वह घबड़ाई।

"क्या हुआ बुआ?"

"कुछ तो नही।"

"कहा चोट लगी है?"

"कही नही···"

होंठ से उंगली छुआकर चम्पा ने इशारे में बतलाया कि बाहर शर्मा जी बैठे है, पीछे बतलाएगी।

दस मिनट बाद शर्मा जी सचमुच ही बाहर निकले।

खून तो टिंचर के फाहे से बन्द हो ही गया, चम्पा की तबियत लेकिन काबू में रही

दूसरे दिन शाम को चम्पा रायसाहब से मिलने दानापुर गई। राय-साहब आर्यसमाजी संस्कारों के धर्मभीरु सज्जन थे। संस्थाओं को उदारता-पूर्वक दान देते रहते थे। परिवार के कई स्त्री-पुरुष शिक्षित थे। संपत्ति तो थी ही, अब आधुनिकता भी प्रवेश कर रही थी।

चम्पा पहले उनकी बेटियों और बहुओं से मिली। उनमें दो तो कन्या-गुरुकुल (देहरादून) की छात्राएं रह चुकी थी। उन्होंने चम्पा से खुलकर बातें की और सहायता का आश्वासन दिया।

रायसाहब ध्यान से चम्पा की बातें सुनते रहे। अन्त में कहा, "तो मुझसे क्या चाहती हो बेटी ? मैं तो अब बूढ़ा हुआ। मेरे नाम पर कौन कहां क्या करता है, मुझे बिल्कुल पता नही चलता। और, पता चल भी जाए तो क्या ? कौन मेरी सुनता है ! मैं तो जीवन-भर इसी सूत्र को मानकर चला हूं कि आप भला तो जग भला···"

आप आश्रम वालों को फटकार तो सकते हैं चाचा जी !—चम्पा बोली।

रायसाहब ने गम्भीर होकर कहा, "मेरी फटकार वे चुपचाप पी जाते हैं और समय-समय पर माफी भी मांग लेते है किन्तु करेंगे वही जो उनका स्वार्थ कहेगा। मैं तो वर्ष मे दो ही एक बार उनके साथ बैठने जाता हूं···"

"और यही चाहते है आश्रम वाले"—चम्पा ने कहा।

रायसाहब का स्वर धीमा हो गया, "गत वर्ष मै अध्यक्षता स्वीकार नही कर रहा था तो शर्मा जी और महाशय मन्नूलाल जी यहा आकर रोए, गीली आखें मुझसे देखी नही गई बेटी !"

"हा, चाचा जी, इसी तरह रो-रोकर स्वार्थी और चालाक आदमी नेहरू से भी अपने कई काम करवा लेते होगे न ?"

"करवाते है। नेहरू ही नही, देश के पचासो बड़े नेता धूर्तों की विनय-पत्रिका के शिकार है। बिना कड़ाई के, बिना दृढ़ता के नियमो का पालन हो ही नही सकता चम्पा ! इस आश्रम की इतनी अधिक पोल तुम्हे मालूम है कि भारी पोथा हो जाएगा अगर लिखवाओ ! यह सब कही अखबारो मे छपने लगे तो उनकी बिक्री बढ जाए।"

"चाचा जी, आप अपने को हटा लीजिए इस आश्रम से।"

रायसाहब कुछ सोचकर बोले, "अभी पांच की कमेटी है, इसे सात की कमेटी बनाकर उसमे चार महिलाओं को लाना चाहिए। एक तो तुम रहोगी ही, रहोगी न ?"

चम्पा फैली हथेलियों को देखती रही। नाखून एक-दूसरे को खरोच

रहे थे। सजीदगी में डूबकर कहने लगी, "इस 'आश्रम' शब्द से मैं बहुत घबराती हूं। रही होगी इसके पीछे कभी कोई अच्छी भावना, अब तो ये आश्रम अनैतिकता के अड्डे है—स्वार्थियों के अखाड़े! हमारी जैसी मूक असहाय बकरियों की ही नही, आप जैसे आदर्शवादी धर्मभीरु बैलों की भी बलि इन आश्रमों के अन्दर चढती आई है। अब वक्त आ गया है कि इन आश्रमों के ढाचे हम बदल डालें···

घंटी बजाने पर आदमी आया तो रायसाहब ने उसे चाय के लिए कहा। चम्पा के चेहरे की ओर गौर से देखकर बोले, "तुम्हें भूख भी तो लगी होगी बेटा?"

"नही"—सिर हिलाकर चम्पा ने कहा, "अन्दर अभी-अभी तो उन्होंने नाश्ता करवाया है।···"

कुछ रुककर वह बोली, "मैं तो यों भी आपका साथ दूंगी लेकिन आपको भी कुछ कष्ट उठाना होगा। संस्था का नाम बदल जाएगा, अधिकारी बदल जाएगे, ढाचा बदल जाएगा। अब वह आश्रयहीन महिलाओं का सहयोगी श्रमकेन्द्र हो सकता है।"

"बिल्कुल ठीक"—रायसाहब ने कहा।

"और मैं अपने लिए आप से कुछ सहायता चाहती हूं।"

"कहो!"

"किस्त पर एक टाइपराइटर दिलवा दीजिए, सिलाई-मशीन तो मेरी अपनी है ही···"

"क्यों, अब शर्मा के साथ नही रहोगी?"

"नही। फिर भी तो मैं उनसे मिलती रहूंगी। कई बातों मे मेरी और शर्मा जी की राय नही मिलती है। किन्तु इस जीवन में उन्हें भूल नहीं सकती मैं—जब मैं टूट चुकी थी और आत्महत्या के अलावा और कोई रास्ता सूझ नही रहा था, उस समय शर्मा जी ने ही मेरी बाह पकड़ी थी।"

चाय आ चुकी थी।

कप में होंठ लगाकर रायसाहब ने चुस्की ली चम्पा से भी पलक के इशारे से चाय पीने के लिए कहा। क्षण-भर बाद बोले, "चीनी और मगवा लो, मैं डाइविटीज़ का गुलाम हूं।"

"ठीक है. अब और नही चाहिए चीनी !"

"तो, टाइपराइटर हिन्दी वाली होगी ?"

"जी, अंग्रेजी तो नही जानती हूं न !"

"पढ़ाने का काम करोगी ?"

"मैट्रिक भी तो होती···"

"खैर, कोई बात नही।"

"मैं कोशिश करूंगी कि अगले वर्षों में मैट्रिक की तैयारी करूं !"

"सब कर सकती हो तुम, बहादुर लड़की हो !"

"आपकी आशीष बनी रहे चाचा जी···"

"कहां रहोगी, जगह ठीक कर ली है ?"

चम्पा ने अपने रहने की व्यवस्था के बारे में संक्षेप में बतला दिया। मुन्शी मनबोध लाल और दिवाकर शास्त्री के नाम बतलाए। शास्त्री, को रायसाहब जानते थे, कई बार साहित्यिक समारोहों के लिए चन्दा ले गए थे।

चाय खत्म करके चम्पा उठने ही वाली थी। रायसाहब का भी कप खाली हो चुका था !

वह बोले, "दस मिनट और बैठो।"

चम्पा ने कहा, "देर हो जाएगी।"

"हमारी गाड़ी है, छोड़ आएगी···इन आश्रमों पर तुम्हारा गुस्सा वाजिब है चम्पा ! मैं सब समझता हूं बेटी ! जिस तरह कांग्रेस बुढ़िया हो गई है, उसी तरह देश की और भी बहुत सारी संस्थाएं पुरानी पड़ गई है···सेवा-समिति, विधवाश्रम, अनाथाश्रम, महिलाश्रम, हितकारिणी सभा···इस तरह के सैकड़ो साइनबोर्ड फीके पड चुके हैं। इनमे से दो-एक संस्थाएं कहीं जिन्दा है भी तो गुटबाज़ लोग गीधो की तरह उन्हें नोच-नोच

कर खा रहे हैं।

फिर आवाज धीमी करके झुकते हुए कहा, "हमारा आर्य-समाज, देव-समाज, बंगालियों का ब्राह्म समाज, बंबई वालो का प्रार्थना समाज··· ये संगठन भी कमज़ोर हो गए है। अब तो राजनीति के मैदान मे भी नई पार्टिया ज्यादा चमक रही हैं। अपनी सत्तर साल की उम्र है बेटी, इस उम्र तक आते-जाते साइन्स का प्रोफेसर भी अगली पीढ़ी का विरोध करने लगता है। सत्तर-पछत्तर वर्ष का चीफ मिनिस्टर अठारह-बीस की उम्र के छोकरों पर गोलियां चल चुकने के बाद कहता है: हुल्लड़बाज़ों को सबक सिखाया, ठीक किया।

तश्तरी मे अलग-अलग कटोरियों के अन्दर इलायची, सौफ और सुपारी, धनिया के दाने रखे थे। चम्पा ने सौफ और सुपारी लेकर मुह के हवाले किया। बोली, "चाचा जी, अपने बिहार मे औरतो की स्थिति पिछड़ी हुई है, क्या कारण है इसका?"

रायसाहब ने कहा, "बिहार मे ही क्यों, हिन्दी बोलने वाले बाकी जो चार प्रदेश है, वहां भी स्त्रियों का यही हाल है!—बंगाल, महाराष्ट्र, आन्ध्र, केरल, मद्रास, मैसूर, पंजाब, गुजरात—इन प्रदेशों मे स्त्रियों का सामाजिक दर्जा कही ऊंचा है। पिछले दो सौ वर्षों मे समाज का सुधार करने वाले ऐसे महापुरुष हिन्दी भाषा वाले प्रदेशो में दो ही चार हुए जिनका सम्पर्क बाहर के देशो से रहा हो। कालेजों से पढ-लिखकर लड़कियां निकलती हैं और पुराने समाज के जंगल मे खो जाती हैं। हर विवाहित पुरुष के लिए पत्नी को साथ रखना अनिवार्य होना चाहिए, काम-काज के साथ ही फेमिली क्वार्टर की भी व्यवस्था होती। सहायक धन्धे के तौर पर परिवार की प्रत्येक महिला के लिए कोई न कोई काम मिलता तो कितना अच्छा था। पति की मृत्यु के बाद युवती का ब्याह फिर से करवा देना समाज के चौधरियों का काम है। शिक्षा, चिकित्सा आदि कई विभाग है, जिनमें स्त्रियां अपनी योग्यता के प्रमाण पेश कर चुकी हैं। शासन और निर्माण के कुछ ही क्षेत्र होगे जिनमे स्त्रियां काम

नहीं कर सकती। दरअसल हम ही उन्हें रोके हुए हैं।

चम्पा कहने लगी, "देहात में या शहर में मजदूर लोग अपनी औरतों को बहुत आज़ादी देते हैं। गिरस्ती की गाड़ी को मर्द-औरत उस वर्ग में बराबर-बराबर खींचते हैं। वह हल चलाता है तो यह ढेला फोड़ती है। वह दीवार जोड़ता है, तो यह ईंटें ढोती है। आश्रम के मेहतर का कहीं पैर कट गया, दो महीने काम पर नहीं आया। मैंने मेहतरनी से पूछा—कैसे चलाती हो? झाड़ू दिखलाकर ठसक-भरी आवाज़ में बोली—यही मर्द है मेरा, अपने बच्चों को मैं इसीकी कमाई खिलाती हूं बहिन जी! वो साल-भर भी बिस्तर पकड़े रहेगा तो भी हाय-हाय नहीं मचाऊंगी···"

रायसाहब ने उल्लसित होकर कहा, "बस, बस, यही आत्मविश्वास मैं स्त्रियों में देखना चाहता हूं चम्पा! हम बड़ी जात वालों ने महिलाओं को पंगु बना रखा है, जीवन का सारा रस निचोड़कर सिट्‌टी बनाकर छोड़ दिया है···अपवाद हो सकते हैं लेकिन वह तो दूसरी बात हुई न? कालेज से निकलते ही लड़कियां बहू बन जाएं और लेटी-बैठी सारा-सारा दिन उपन्यास पढ़ती रहें, रेडियो सुनती रहें, तो वह आत्मविश्वास कहां से आएगा? श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरुचि—सभी आवश्यक हैं चम्पा! जीवन में इन पांचों का समन्वय करना होगा। पुरुषों की ही बपौती नहीं है, स्त्रियों का भी साझा है इनमें।"

चम्पा बोली, "पहले तो खैर स्त्रियों को इतनी भी आज़ादी नहीं थी, रामायण-महाभारत और उपनिषदों की बात नहीं लेती हूं। आगे उद्योग-धन्धे बढ़ेंगे, खेती-बाड़ी बढ़ेगी, जहालत और गरीबी हटेगी, साधारण जनता का जीवन सुखमय होगा···तब स्त्रियां भी इस दुर्दशा से छुटकारा पाएंगी, नहीं चाचा?"

"अवश्य पाएंगी छुटकारा," रायसाहब ने जंभाई लेकर कहा, "बल्कि यों कहो कि आज भी स्त्रियों को साथ लिए बिना हम आगे नहीं बढ़ेंगे। धूर्तों ने 'त्याग की देवी' और 'प्राणेश्वरी' आदि कहकर स्त्रियों की भावु-

कता को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए हमेशा उकसाया है। अब यह सब नहीं चलेगा चम्पा।"

"दोप स्त्रियों का भी तो है!"

"स्त्रियो का नही, उनकी मूर्खता का···"

चम्पा हसने लगी। रायसाहब ने आंखें नचाकर कहा, "हंसती हो? मैं बिल्कुल ठीक कहता हूं चम्पा, तुम चाहे जितना हंसो! मैं बहुत घूमा-फिरा हू, सभी प्रान्तों के स्त्री-पुरुप देखे हैं। उनके बीच रहने का अवसर मिला है वार-बार। बातें की है, सुख-दुख में उनके मूड मालूम किए हैं। और, इसीलिए अपने यहां की त्रुटियां अधिक अखरती हैं चम्पा!"

उसने माथा हिलाकर हामी भरी। क्षण-भर बाद संकोच के स्वर मे बोली, "अभी मैं जाऊंगी।"

रायसाहब ने घण्टी बजाकर नौकर को बुलाया। उससे कहा, "ड्राइवर से कहो कि गाडी निकाले, चम्पा को बाकीपुर छोड़ आना है।"

दोनों हाथ जोड़कर चम्पा ने कहा, "नमस्ते!"

"नमस्ते!"—रायसाहब ने कहा, "टाइपराइटर अगले सप्ताह तक तुम्हें मिल जाएगी!"

१७

निर्मला साढ़े तीन महीने बाद लौट आई तो मुन्शी मनबोधलाल को बड़ा ही अच्छा लगा। पहले कहा करते थे, कम्पाउण्डर की बीवी के बिना हमारा मकान सूना पड़ गया है। निर्मला के कहकहे, उसकी मीठी खिल-खिलाहट, बातचीत की आवाज़ मुन्शी जी के कानों को बड़े प्रिय थे। कई बार वह कम्पाउण्डर से कह चुके थे: आपकी घरवाली बड़ी गुनमन्त है, ज़ुबान से इमरित टपकता है···

बाबू मुगेरीलाल को अपनी औरत का गुणगान पसन्द नहीं था, यह

सोचना गलत होगा। लेकिन गोद जो सूनी थी। आठ-दस वर्ष की दुनियादारी के बाद भी गृहलक्ष्मी की कोख परिवार का मनोरथ पूरा न कर सके तो? वंश-बेल की गाठ मे टूसे न दिखलाई पड़ें, कलियों के गुच्छे न फूट निकलें तो?…बस, एक यही बात थी जो निर्मला के बारे में कम्पाउण्डर को खटकती थी।

दिवाकर शास्त्री इस दृष्टि से भाग्यवान थे। चार-पांच महीने बाद प्रतिभामा वापस आई तो चेहरे का रंग बदला हुआ था।

पड़ोसवाली ने मुस्कराकर पूछा, "कै महीने हुए है? जवाब में बायें हाथ की तीन उंगलियां उठी।"

निर्मला वहीं थी। सोचा—भगवान की लीला अद्भुत है! कहीं ढेर का ढेर, कहीं अंधेर का अंधेर!

पड़ोसवाली अब इसके चेहरे की ओर देखने लगी।

निर्मला को लगा कि दुनिया की पैनी नज़र भाले की नोंक बनकर उसकी कोख के अन्दर धंसी चली जा रही है…

प्रतिभामा की गोद में सत्रह महीने की हेम थी। लालच-भरी निगाहों से बच्ची ने मां की छाती को देखा और एक नन्ही हथेली ब्लाउज़ के अन्दर होती हुई स्तन तक पहुंच गई।

"शैतान की नानी!"—प्रतिभामा ने बच्ची को गोद से ठेलकर नीचे कर दिया और खीभकर बोली, "कंस की बेटी, दिन-रात मुझे चबाने के फेर में रहती है।…अप्पी, ओ अप्पी, कहां मर गई?"

"आई अम्मा!"—अपर्णा की आवाज़ निचले तल्ले से आई।

"ले जा इसको, अकेले क्या खेलती है!"

"आ तो रही हूं!"

छै साल की अपर्णा आकर हेम को जैसे-तैसे उठा ले गई।

अब प्रतिभामा ने एक बार कम्पाउण्डर की बीवी को देखा और फिर पड़ोसवाली को। बोली, "इस बेचारी का क्या कसूर है बहिना, मर्द ही ध्यान नहीं देता है।"

होंठ सिकोड़कर पड़ोसवाली ने माथा हिलाया, कहने लगी, "अकेले मर्द ही क्या कर लेगा ? औरत को भी तो हाथ-पैर दे रखे हैं राम जी ने ! मगर, अकिल न हो तो हाथ-पैर चलाकर भी कुछ नहीं होगा बहन ! पुनपुन नदी के किनारे यहा से छै-सात कोस पर सन्तों की जमात टिकी हुई है। सोमवार को वहा भारी भीड़ जुटती है। मन्त्र पढ के भभूत चटा देते है और काम बन जाता है। चलना हो तो चले, मैं साथ ही जाऊंगी···"

निर्मला ने गरम होकर कहा, "ऐसी जगहों में कौन-से मन्त्र पढ़े जाते हैं और कैसी भभूत चटाई जाती है, मुझे मालूम है, विभाकर की मां। सगी सन्तान के लिए यही सब करना होगा तो मैं टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर नही चलूगी, सीधी सड़क पकड़ूंगी। आप मेरा मतलब समझ गई होगी। इस तरह की बातें सुनना मुझे पसन्द नही है···"

"लो, तुम तो बुरा मान गई ! ···" पड़ोसवाली नरम होकर बोली।

प्रतिभामा ने कहा, "बहिना, तुम्हारा दिल साफ है ! जो बात गले तक आ जाती है, कह डालती हो ! तुम्हें मालूम नही था न ? निर्मला ने बडी बहन के लड़के को गोद ले रखा है, पांच वर्ष का हो जाएगा तब साथ रहने लगेगा। कौन अपना और कौन पराया, मन मान ले तो तुम किसीकी भी मां बन सकती हो ! किस्मत खोटी हुई तो अपनी कोख का लडका ही तुम्हारी झुकी कमर पर चार लात नहीं जमा देगा ? ···लेकिन, मुझे ले चलो उन सन्तों के पास ! देखती नही हो, किस तरह तंग आ गई हूं बच्चों से ? मैं कोई ऐसी भभूत चाटना चाहती हूं जिससे अब आगे बाल-बच्चे पैदा न हों, जो है वे स्वस्थ-प्रसन्न रहें और बड़े होकर हमारी खोज-खबर लेते रहें। बहिना, बतलाओ, कब मुझे ले चलोगी ?"

पड़ोसवाली गर्दन के पीछे बाल खुजलाने लगी और निर्मला मुस-कराती हुई उठ गई।

उम्मी पिछले सप्ताह आई, समझा-बुझाकर मा को ले गई। वही दो कमरे खाली हुए तो उनमे से एक बुआ को मिल गया था। तिलकधारी दास वाला सड़क की तरफ का बाहरी रूम भी खाली हुआ था। किताब

की दूकान के लिए दास जी को 'अशोक पथ' पर इधर एक बड़ी अच्छी जगह मिली थी। बुआ ने 'शिल्प-कुटीर' के लिए बीस रुपये भाड़े पर वह खोली भी ले ली।

दिन के छज्जे से नया साइनबोर्ड टंग गया: शिल्प-कुटीर। पांच अक्षर दुरंगे और मोटे थे। नीचे पतली लिपि में लिखा था—'अचार, मुरब्बे, पापड़, बड़ियां। बेल-बूटे, झालर, रूमाल, मेजपोश, मोजे, स्वेटर।' एक और पंक्ति थी—'हिन्दी में टाइप करवाइए: स्त्रियों और बच्चों के कपड़े सिलवाइए।'

बुआ अब वह बीमार और मरियल औरत नहीं थी, जिसे निर्मला ने कई महीनों तक देखा था। पीछे भुवन के प्रति हमदर्दी पैदा होने के बाद, मन ही मन उसने इसी बुआ को बार-बार कोसा था।

निर्मला को अब बुआ के पास बैठना अच्छा लगता था। कम्पाउण्डर ड्यूटी के लिए निकल जाता तो दुपहर के बाद दो-तीन घण्टे वह दूकान के अन्दर आकर स्टूल पर जम जाती। मदद के लिए एक नेपाली नौजवान को रख लिया गया। सामने काउंटर नहीं, मेज थी छोटी-सी। दोनों ओर दो शो-केस निहायत मामूली ढंग के। पीछे चार रैक, मझोले आकार के। ठेठ काठ की दो कुर्सियां। सामग्री अभी शुरू-शुरू में कम ही थी। नेपाली को दूकान का काम समझा दिया था। खुद टाइपराइटर खटखटाया करती थी। दिवाकर शास्त्री ने अपने निबन्धों का संकलन दे रखा था। एडवान्स के पचीस रुपये पाकर चम्पा का उत्साह बढ़ गया था।

कई दिनों से चम्पा की इच्छा हो रही थी कि भुवन के बारे में मालूम करे। आज उसने पूछ ही दिया, "भुवन की चिट्ठी नहीं आई है?"

"नहीं बुआ!"—कम्पाउण्डर की बीवी ने सहज स्वर में कहा। मन ही मन बोली: अब कोई हर्ज नहीं, भुवन के बारे में थोड़ा कुछ बतला देना चाहिए।

"गया में मिली होगी चिट्ठी।"

"मुलाकात हुई थी बुआ!"

"कब ?"

"पिछले महीने बनारस गए थे हम···"

"भुवन बनारस है ?"

"सुनो भी तो बुआ···"

निर्मला ने संक्षेप में बनारस का समाचार दिया ।

चम्पा टाइपराइटर छोड़कर उठी, निर्मला की पीठ के पीछे खड़ी हो गई। दोनों हाथ उसके कन्धों पर रखकर झुकी, कान के पास मुंह करके कहा, "सच बतलाओ निर्मला, तुम उससे मिली थी ? मेरा पत्र पढ़ा था भुवन ने ? क्या कहती थी मेरे बारे में ?"

"कुछ नहीं बुआ, तुम्हारे बारे में उसने कुछ नहीं कहा," निर्मला बोली, "चिट्ठी तुम्हारी वाली भुवन ने दो बार पढ़ी और भाभी को थमा दिया ।"

"भाभी ने पत्र पढ़ा होगा ?"

"पढ़ा और अन्दर जाकर दराज़ में रख आई ।"

"भुवन मुझे दो पाती का एक पोस्टकार्ड भी नहीं भेजेगी ? आते वक्त तुमने कहा होता तो ज़रूर मेरे लिए वह कुछ लिखके तुम्हें देती निर्मला !"

"मैंने कहा था बुआ, भुवन चुप लगा गई ।"

चम्पा के दिल ने कहा—भाभी ने मना कर दिया होगा !

भाभी ने मना कर दिया—निर्मला अन्दर ही अन्दर बोली ।

उन्होंने एक-दूसरे के चेहरे की ओर देखा ।

चम्पा के हाथ निर्मला के कन्धे छोड़कर नीचे लटक गए थे। रुख सड़क की ओर हो गया था।

तीन बज रहे थे। बाहर अब भी कड़ी धूप थी। चार तख्तों वाली दो किवाड़ियों में से एक ही तख्ती खुली थी, प्रकाश और हवा के लिए उतना ही काफी था।

नेपाली नहीं था, एक ग्राहक आ गया—आधा सेर पापड़ चाहिए,

मूग का !

चम्पा ने पापड़ की गड्डी निकालकर उसे थमाई और पैसे लिये।

ग्राहक चला गया तो बोली, "निर्मला, मुझे भुवन का पता दोगी ?"

निर्मला उठकर मेज के पास आ गई। कहा, "पता क्यों नहीं दूगी बुआ ?"

अचार के दो छोटे-छोटे मर्तबान थे, पीछे रैक पर। कपडे से उन्हे पोंछती हुई चम्पा आहिस्ते से बोली, "ना, रहने दो निर्मला, पता लेकर क्या करूगी ? हां, तुम कभी बनारस लिखो तो मुझसे कहना। एक बार मैं भुवन को और लिखूंगी, बस एक बार और···"

निर्मला फिर पीछे गई। सामने होकर चम्पा को देखने लगी। चेहरे। पर ग्लानि की छाया तैर रही थी। होंठ भिचे हुए थे। पलकें गीली थी, पपोटों में स्पंदन था। घुटती सांसों की विषम गति में नथने फूलकर फडक रहे थे।

चम्पा के कंधे पर हाथ रखकर मुलायम आवाज मे उसने कहा, "क्यों बुआ, एक ही बार क्यों लिखोगी भुवन को ? उस गरीब के और कौन है, हमी लोग तो है···"

छलकती आंखों से चम्पा बोली, "मैं कौन हू उसकी ! उसे खाई की ओर लुढकाने की तैयारिया चल रही थी और मेरा कलेजा तनिक भी धड़क नही रहा था ! क्या कसर थी भुवन का गला कटने में ? निर्मला, तुम न होती तो···"

चम्पा सुबकने लगी, आगे एक भी शब्द नही निकला उसकी जुबान से। वह स्टूल पर बैठ गई और आंसू बहाती रही।

निर्मला की भी आंत फटने लगी। उसने मुश्किल से अपने को रोका। आंचल के छोर से चम्पा की आंख वह बार-बार पोछती थी लेकिन आंसू रुकते नही थे।

विकल स्वर मे निर्मला ने कहा, "तुम्हे मेरी कसम, बुआ ! अब मत रोओ ! भुवन हमेशा याद करती है तुम्हे, अकेले मे रोती है तुम्हारे